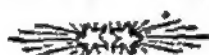


श्रीपद्मसिंह मुनिराजकृत—

णाणसार (ज्ञानसार)

मूलगाथा, संस्कृत छाया, भाषा छन्दबद्ध और भाषाटीका सहित।



भाषाटीकाकारः

पं० त्रिलोकचन्दजी जैन, केकड़ीनिवासी।



प्रकाशकः

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

दिगम्बर जैनपुस्तकालय, कापड़ियाभवन, सूरत।

श्री० स्व० सेठ कालीदास अमथाभाई-दवका (बड़ौदा)
नि० के स्मरणार्थ उनके पुत्र श्री० सेठ सौभाग-
चंदजीकी ओरसे 'जैनमित्र' के ४४ वें
वर्षके ग्राहकोंको भेंट।

प्रथमावृत्ति] कार्तिक वीर सं० २४७० [प्रति १५००

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस—सूरतमें मूलचन्द किसनदास
कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य—छह आना।

प्रस्तावना।

दि० जैन समाजमें पूर्व समयमें अनेक मुनिराज परम अध्यात्मज्ञानी होगये हैं उनमेंसे श्री पद्मनन्दी मुनि महाराज भी एक थे। आपने विक्रम संवत १०८६ श्रावण सुदी ९ को अम्बड नगरमें ठहरकर श्री **पाणसार** अपर नाम **ज्ञानसार** नामक ग्रंथकी ६३ गाथाओंमें रचना की थी, जो सेठ माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमालामें संस्कृत छाया सहित प्रगट हो गया है, लेकिन उसकी भाषाटीका अबतक प्रगट नहीं हुई थी।

करीब १॥ साल पूर्व हमको पं० तिलोकचंदजी पाटनी, मदनगंज नि० द्वारा मालूम हुआ कि उनके पास पाणसारकी छन्दबद्ध और भाषाटीका हस्तलिखित है जिसकी रचना (सं० १९७० कार्तिक वदी २ को उन्होंने केकड़ी (अजमेर) में की थी) अतः हमने इस भाषाटीकाकी कोपी उनसे मंगाई जो उन्होंने हमारे पास भेज दी थी, वह आज प्रगट की जाती है।

यह पाणसार या ज्ञानसार अध्यात्मिज्ञानका भंडार है। अतः इसकी स्वाध्याय करके अध्यात्मक ज्ञानकी निधि प्राप्त कीजिये यही निवेदन है। इसमें गाथा व संस्कृत छायाके बाद चौपाई छंदमें जो रचना की गई है, वह सरल व सुन्दर है, फिर उसपर अर्थ और कहीं २ विशेष खुलासा भी किया गया है। अतः इस आध्यात्मिक ग्रन्थका भाव समझनेमें कठिनाई नहीं होगी, ऐसा हमारा अनुमान है।

इस ग्रंथको 'जैनमित्र' के ४४ वें वर्षके ग्राहकोंको उपहारमें देनेकी जो व्यवस्था श्री० अध्यात्म-प्रेमी सेठ **सोमागचन्द कालीदासभाई डबका** (पादरा, बड़ौदा) निवासीने करदी है उसके लिये आपका जितना उपकार माना जाय-कम है। इस पुस्तकमें आपके पिता स्व० सेठ

कालीदास अमथाभाईका संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है, क्योंकि अन्त समयके २०००) के दानमेंसे ही यह शास्त्रदान होरहा है।

इस पुस्तककी कुछ प्रतियां सेठ सोभागचन्दजीने अलग भी ... हैं तथा हमने कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली हैं। आशा है आध्यात्मिक पुस्तकका शीघ्र ही प्रचार हो जायगा।

इस पुस्तकके भाषाकार पं० त्रिलोकचन्दजी (केकड़ी)ने भी ... कृत परमात्म-प्रकाशकी भाषा छन्दबद्ध रचना भी की है। उसकी नकल हमारे पास पं० त्रिलोकचन्दजीने भेज दी है। जो कोई दानी ... जानेपर प्रकट करनेकी हमारी अभिलाषा है। अतः ऐसे दानी ... हमसे पत्रव्यवहार करें।

सूरत,
वीर सं० २४७०
कार्तिक सुदी १
ता० २९-१०-४३

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया
प्रकाशक।

स्व० सेठ कालीदास अमथाभाई-डबकाका संक्षिप्त परिचय।

बड़ौदा राज्यके बड़ौदा प्रांतके पादरा तालुकामें मही नदीके ऊपर डबका नामका गांव है। वहांपर दि० जैन नृसिंहपुरा जातिमें संवत् १९१२ वैशाख वदी १३ रविवारके दिन रात्रिको १२॥ बजे आपका जन्म हुआ था। आपके पिताका नाम शाह अमथाभाई हेमचंदास था और माताका नाम मोतीबाई था। बड़े भाईका नाम त्रिभोवनदास अमथाभाई था, जिनको बाल्यावस्थामें पिताका स्वर्गवास होनेसे घरकी व्यवस्थाका काम करनेकी फरज पड़नेसे और गांवमें दूसरी भाषा (अंग्रेजी) का प्रबंध नहीं होनेसे सिर्फ गुजरातीका आपने अभ्यास किया था। लेकिन वाचनकार्य अधिक होनेसे हिंदी भाषा और सरल संस्कृत भी आप समझ सकते थे। आपका प्रथम विवाह भड़ौच जिलेके वागरा गांवमें मोतीलाल हरजीवनकी बहिन पार्वतीके साथ हुआ था और द्वितीय विवाह भड़ौच जिलेके 'अणोर' गांवके शाह शिवलालरायचंदजीकी बहिन उमियाबाई (जमनाबाई) के साथ हुआ था।

किसी भी व्यक्तिकी महत्ता धनाढ्य होनेमें या विविध भाषाके विद्वान होनेमें नहीं है, किन्तु मोक्षमार्गका यथार्थ बोध प्राप्त करनेमें है। उस समय गुजरातमें देव, गुरु, धर्म और सप्ततत्वका यथार्थ ज्ञानी श्रद्धानी शायद कोई भी नहीं था। सिर्फ गतानुगतिका पूजा, व्रत, उपवास, विना हेतु समझे बाह्य क्रियाकांडमें मचा हुआ था। यथार्थ

श्रद्धान, ज्ञानादि प्राप्त करनेका कोई निमित्त नहीं था। ऐसे ...
उनके समागममें आनेवालोंपर छाप पड़े ऐसा कोई ज्ञान-अ ...
आपने संपादन किया था। उनके अध्यात्म प्रेमसे आकर्षित ...
श्वेताम्बर मुनि श्री० हुकमचंदजीने अपने बनाये हुए अध्यात्म ...
और ज्ञान प्रकरण ये दो ग्रन्थ आपको भेट किये थे। ...
करनेकी रुचि होनेसे दिगम्बर जैन धर्मके महत्वपूर्ण छपे हुए सभी
आप मंगाया करते थे। वैसे ही श्वेताम्बरोंके वेदांतके और ...
भी ग्रन्थ मंगाया करते थे। इससे आपके घरमें छोटासा पुस्तकालय
बन गया था। मासिक पत्रोंमें उनको 'जैन हितैषी' खास प्रिय था।
उसमें भी प्रेमीजीके लेख आप बहुत रुचिपूर्वक पढ़ते थे।

जब जब संसारी कामोंसे निवृत्ति मिलती थी तब २ आप अपने मंगाये हुए तात्त्विक ग्रंथ पढ़ते थे, -या" बनारसीदासजी कृत समयसारके काव्य; बनारसीदासजी, भूधरदासजी, भगवतीदासजी, आनन्दघन, हीराचंदजी आदिके बनाये हुए खास करके अध्यात्मिक पद गाते थे। सम्मेदशिखर, गिरनार, पावागढ़ आदि तीर्थक्षेत्रोंकी यात्रा आपने की थी। इस तरह जीवन व्यतीत करते हुए आपने संवत १९८८के आश्विन शुक्ल चतुर्दशीकी रात्रिके १० बजे णमोकार मंत्रका उच्चारण करते २ देह छोड़ दी थी व देह त्यागके पहले कई दिन पूर्व अपनी पूर्ण सावधानीमें आपने जैनोंकी भिन्न२ संस्थाओंको २०००) का दान दिया था। आपके सुपुत्र सेठ सौभाग्यचंद भी अपने पितातुल्य बड़े अध्यात्मप्रेमी व दानी हैं। —प्रकाशक

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

श्रीपद्मसिंहमुनिराजकृत–

ज्ञानसार (णाणसार)

मूल गाथा, संस्कृत छाया, भाषा छन्दोबद्ध व भाषाटीका सहित ।

सिरिवड्ढमाणसामी सिरसा णमिऊण कम्मणिड्डहणं ।
वोच्छामि णाणसारं जह भणियं पुव्वसूरीहिं ॥ १ ॥

श्रीवर्द्धमानस्वामिनं शिरसा नत्वा कर्मनिर्दहनं ।
वक्ष्यामि ज्ञानसारं यथा भणितं पूर्वसूरिभिः ॥ १ ॥

चौपाई ।

कर्मनाश अविचल थिति पाई, स्वामी वर्द्धमान सिर नाई ।
पूर्वाचार्य कथन अनुसारी, ज्ञानसार वर्णूं सुखकारी ॥ १ ॥

भाषाकारका मंगलाचरण ।

भूत भविष्यत अबीके, नमूं केवली सर्व ।
द्वादशांग श्रुतको नमूं, नमूं गुरूगत गर्व ॥ १ ॥
ज्ञानसार प्राकृत रचा, पद्मसिंह मुनींद ।
रचिहूं भाषा चोपई, जजि तस पद अरविंद ॥ २ ॥

अर्थः—कर्मोंके नाश करनेवाले श्री वर्द्धमान जो अंतिम तीर्थंकर तिनको उत्तम अंग जो मस्तक ता करि नमस्कार करि जैसे पूर्वाचार्योंने वर्णन किया उसही अनुक्रम करि ज्ञानसार नाम ग्रंथको कहूंगा ।

भावार्थ—ज्ञानावरणी दर्शनावरणी मोहनीय अंतराय, ये च्यार तो घातिया कर्म और वेदनीय आयु नाम गोत्र ये च्यार अघातिया, इन सब आठों कर्मोंको नष्ट करि अविनश्वर स्थान ताहि प्राप्त हुए। अतः अनंतज्ञानको प्राप्त हुए कारण जिस मार्गसे उन्होंने ज्ञानविभव पाई उसही मार्गका वर्णन किया जायगा। अत: इस ग्रंथकी आदिमें वो ही आराध्य है।

प्रश्न—इसही मार्गसे ही अनंत जीवोंने ज्ञानविभव प्राप्त करी है उनको क्यों नहिं नमस्कार किया?

उत्तर—अंतिम तीर्थंकरसे ही केवलज्ञानकी परिपाटी चल रही है। इस समयके जीवोंके लिये तो विशेष उपकारी वही हैं। अत: वह ही मुख्य आराध्य हैं।

आगे—यह जीव संसार परिभ्रमण क्यूं करै है सोई कहैं हैं——

जीवो कम्मणिबद्धो चउगइसंसारसायरे घोरे।
बुड्डइ दुक्खक्कंतो अलहंतो णाणबोहित्थं॥ २॥

जीवः कर्मनिबद्धः चतुर्गतिसंसारसागरे घोरे।
बुडति दुःखाक्रान्तो अलभमानः ज्ञानबोहित्थम्॥ २॥

चौपाई।

कर्म बंधमें यह अज्ञानी, ज्ञान नावको नहिं नहिं पायी।
दुःखयुक्त भवसागर मांही, चउ गतिमें डूबे सक नाहिं॥ २॥

अर्थ:—ज्ञानावरणादि कर्मोंसे बन्धा हुआ यह जीव ज्ञानरूपी नावको नहीं पाकर नरक तिर्यंच मनुष्य देव इन च्यार गतिरूप संसार-में डूबे हुए दुःखी होय है।

भावार्थ—अनन्तानन्त काल तांई तो यह प्राणी मूढ मिथ्यातके उदय अज्ञानरूप ही रहा, जहां अक्षरके अनंतवें भाग ज्ञान पाइये हैं। यहांसे काल लब्धितैं निकसि दो इन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चोइन्द्रिय, असैनी पंचेंद्रिय इन तिर्यंच पर्यायनिमें हूं याके गुणकर मनडानेयोग्य मति-श्रुतज्ञान ही नहीं हुआ जिससे कि उपदेशादि सुनकर विचारपूर्वक हित अहितको जाण सके। यहांतक नो सम्यग्ज्ञानकी योग्यता ही नहीं। कदाच सैनी पंचेंद्रिय भी हुआ तो सम्यग्ज्ञानकी प्राप्तिका कारण मिलना दुर्लभ। कोईक तिर्यचके उपदेशादिका निमित्त पाय काल लब्धितैं सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति होय है तौ भी महाव्रतादि धारण करि मुक्तिसाधनकी पूर्ण योग्यता नहीं। ये सर्व पर्यायें उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं।

यहांतक तो सम्यग्ज्ञानरूपी नौकाकी प्राप्ति ही दुश्वार है। इस मनुष्य जन्ममें सम्यग्ज्ञानरूपी नौकाकी प्राप्तिकी योग्यता है सोहू द्रव्य क्षेत्र काल भाव बाह्य निमित्त विना बणै नहीं, इसलिये ज्ञान भावना मनुष्य पर्याय विना और पर्यायनिमें मुक्तिप्राप्तिके योग्य पासकै नहीं। और ज्यादा पर्यायें यह जीव ऐसी ही पावै हैं कि जहां इस ज्ञान नौकाको पहचान भी न सकै। इसे नहीं पाकर ही प्राणी संसार-समुद्रमें बहा जाय है सो निकल सकै नहीं। अतः अनादिकालसे बोधिलाभ हुआ ही नहीं, इस ही लिये अद्यापि संसारचक्रसे निवृत्त हुआ नहीं।

आगें—कैसा ज्ञान ग्रहण करनेयोग्य है सो कहै हैं—

णाणं जिणेहि भणियं फुडरत्थअइहि विगयलेवेहि।
तं चिय णिस्संदेहं णायव्वं गुरुपसाएण ॥ ३ ॥

ज्ञानं जिनैः भणितं, स्फुटार्थवादिभिः विगतलेपैः ।
तदेव निस्संदेहं, ज्ञातव्यं गुरुप्रसादेन ॥ ३ ॥

चौपाई ।

स्पष्टवाद निर्लेप जो होई, जिनवर कथित ज्ञान जो होई ।
निःशंकित होके उर धारो, गुरु उपदेश थकी निरधारो ॥ ३ ॥

अर्थः—गुरुके उपदेशसे ज्ञान जानना चाहिये । कैसा ज्ञान जो कि तीर्थङ्कर केवलीने कहा हो । तीर्थङ्कर धर्मतीर्थ चलानेवाले होते हैं औरका कहा प्रमाण नहिं, क्योंकि प्रामाणिक वक्ताके वचन प्रामाणिक होते हैं । तीर्थङ्कर स्पष्ट रूपमें पदार्थोंका वर्णन करते हैं । क्योंकि स्पष्ट वर्णन बिना मंदबुद्धि समझे नहीं ।

तीर्थंकर कर्मोंके लेपसे रहित हैं, कर्म लेप दूर हुए बिना सर्वज्ञ नहीं हो सके । सर्वज्ञ बिना स्पष्ट कैसे जाने । स्पष्ट जाने बिना यथार्थ उपदेश नहीं हो सका । इसलिये उनहीका कहा हुआ ज्ञान सन्देह रहित है ।

प्रश्न—इस पंचमकालमें ऐसे वक्ता तो कोई है नहीं फिर सत्यार्थ कैसे समझे ?

उत्तर—उनके द्वारा कहे ग्रन्थोंके अनुकूल हो उसे सत्यार्थ समझो ।

प्रश्न—आजकल जो ग्रन्थ देखे जाते हैं वह तो छद्मस्थ आचार्योंकी कृति है ।

उत्तर—अंतिम तीर्थंकर वर्द्धमानने जो व्याख्यान किया ताकी गणधर व ऋषियोंने द्वादशांग रूप रचना की जिसके बाद ज्ञानकी कमी होती गई । वर्द्धमान भगवानके ६४२ वर्ष

तथा ६६३ वर्ष पीछे भूतबलि

रचना कर पुस्तकाकार किया क्योंकि ऐसा किये विना ज्ञान नष्ट हो जाता।

और भी अनेक आचार्योंने अनेक ग्रन्थ रचे सो भी उतनी विस्तृत रचना नहीं किंतु संक्षेपमें साररूपसे द्वादशांगके अनुकूल रचे इसलिये परिपाटी अपेक्षा सर्वज्ञ कथित ही है।

प्रश्न–ग्रन्थ तो अन्य धर्मवालोंके भी हैं वह भी सर्वज्ञकथित बताते हैं फिर कैसे निर्णय किया जाय?

उत्तर–ग्रन्थोंको मिलान करके जो ग्रन्थ युक्ति अनुमान प्रत्यक्षसे बाधित नहीं हो सो प्रमाण मानो। निर्णय बुद्धिसे विचारे तो सांच झूठ छिपै नहीं, इसप्रकार निर्णय करो और सर्वज्ञकथित ग्रहण करो।

कंदप्पदप्पदलणो डंभविहीणो विमुक्कवावारो।
उग्गतवदित्तगत्तो जोई विण्णाय परमत्थो ॥ ४ ॥

कन्दर्पदर्पदलनो दम्भविहीनो विमुक्तव्यापारः।
उग्रतपोदीप्तगात्रः योगी विज्ञः परमार्थः ॥ ४ ॥

चौपाई।

काम गर्वके दलनेवाले, सब व्यापार कपट सब टाले।
उग्र तपोंमें दीपित काया, सो वक्ता ज्ञानी मुनिराया ॥ ५ ॥

अर्थ–कामरहित ज्ञान पूजा कुल जाति पराक्रम वैभव तप शरीर इन आठ प्रकारके मदोंसे रहित उग्र तपोंसे दीप्तिमान शरीरधारी ऐसे गुरु ही ज्ञानके उपदेशके लिये समर्थ हैं।

भावार्थ–कामी मानी कपटी रागद्वेषयुक्त गुरु सत्यार्थ उपदेश नहीं दे सके इसलिये ग्राह्य नहीं।

पंचमहव्वयकलिओ मयमहणो कोहलोहभयचत्तो ।
एसो गुरुत्ति भण्णइ तम्हा जाणेह उवएसं ॥ ५ ॥

पञ्चमहाव्रतकलितः मदमथनः क्रोधलोभभयत्यक्तः ।
एष गुरुरिति भण्यते तस्मात् जानीहि उपदेशं ॥ ५ ॥

चौपाई ।

शुद्ध महाव्रत पाँचों धारै, क्रोध लोभ मद मोह निवारै ।
परिग्रह अंत भय त्याग सोई, ऐसे गुरु उपदेशक होई ॥ ५ ॥

अर्थ—शुद्ध महाव्रतमें युक्त दूर हुए हैं काम क्रोध लोभ चिंता जिनके, ऐसे गुरुका उपदेश सुनो । क्योंकि स्वयं मत क्रोधी लोभी मायावी इत्यादिक चिंतावान यथार्थ उपदेश नहीं दे सके

आगे ध्यानका वर्णन करे हैं—

पत्तोवएससारो जोई जइ णत्थि जिणेइ णियचित्तं ।
तो तस्स ण थाइ थिरं झाणे मरुपहंयपत्तंव ॥ ६ ॥

प्राप्तोपदेशसारः योगी यदि नैव जयति निजचित्तम् ।
तदा तस्य न स्थास्यति स्थिरं ध्यानं मरुत्प्रहतपत्रमिव ॥ ६ ॥

चौपाई ।

सार देशना योगी पावै, निज आतमामें निज मन लावै ।
जो नहिं रोकै सो मन चल होई, पवन वेगमें पत्ते ज्योंई ॥ ६ ॥

अर्थ—उपरोक्त ऐसे गुरुसे प्राप्त किया है उपदेशका सार जिसने ऐसा योगी आत्मामें अपने चित्तको नहीं रोके तो निश्चल ध्यान आत्म चिंतारूप नहीं होता, पवन वेगमें पत्तेकी तरह ।

भावार्थ—ऐसे गुरुसे उपदेश लेकर योगी आत्मचिंतवन विषै लगावे नहीं तो पवनसे पत्तेकी तरह स्थिर नहीं रहै ।

झाणेण विणा जोई असमत्थो होइ कम्मणिड्डहणे।
दाढाणहरविहीणो जह सीहो वरगयंदाणं ॥ ७ ॥

ध्यानेन विना योगी असमर्थो भवति कर्मनिर्दहने।
दंष्ट्रानखविहीनो यथा सिंहो वरगजेन्द्राणां ॥ ७ ॥

चौपाई।

ध्यान विना ध्याता नहिं होई, कर्म दहनको समरथ कोई।
नख दाढ़ी विन केहरि जैसे, गज मारन समरथ नहिं तैसे ॥७॥

अर्थ—जैसे नख और दाढोंके विना सिंह मदोन्मत्त हस्तियोंको नाश करनेमें असमर्थ होता है वैसे ध्यानके विना योगी कर्मोंके नाश करनेमें असमर्थ होता है।

भावार्थ—आत्मध्यान विना कर्मनाश होते नहीं।

तम्हा तडिव्वचवलं णियचित्तं जोइणा जिणेयव्वं।
जियचित्तं णिजझाणं होइ थिरं मद्धसलिलंव ॥ ८ ॥

तस्मात् तडिद्वत् चपलं निजचित्तं योगिना जेतव्यं।
जितचित्तं निजध्यानं भवति स्थिरं मद्धसलिलमिव ॥ ८ ॥

चौपाई।

मन चंचल चपलाकी नाई, ता मनको वश करहू भाई।
बांधे विन जिम जल थिर नांही, मन वश विन ध्यान न हो स्थायी ॥८॥

अर्थ—क्योंकि योगियोंको बिजलीके समान चञ्चल चित्तको जीतना चाहिये। जब ही ध्यान बन्धे हुए जलकी तरह स्थिर होता है।

भावार्थ—मन चंचल है सो आलंबन विना एक जगह स्थिर नहीं रहता सोई आत्मानुशासनमें कहा है—

छन्द शिखरणी ।

अनेकान्ती ही है फल कुसुम शब्दार्थ जिसमें ।
अरु शाखा पत्ते बहुत नय भासा लसत जहां ॥
धनी है ऊँचाई जड़ दृढ़ मतिज्ञान जिसका ।
रमावे विद्वान् या श्रुत तरु विषै चित्त कपिको ॥१७०॥

ध्यानके योग्य स्थान ।

गिरिकंदरविवरसिलासयेसु मढमंदिरेसु सुण्णेसु ।
णिद्दंसमसयणिज्जणठाणेसु झाणमब्भसह ॥ ९ ॥

गिरिकंदराविवरशिलाशयेषु मठमंदिरेषु शून्येषु ।
निर्दंशमशकनिर्जनस्थानेषु ध्यानमभ्यसत ॥ ९ ॥

चौपाई ।

गिरि कंदर छिद्र शिल मठमाहीं, कोतर घर सुने वन ठौहीं ।
दंश मेश अरु मक्खि नर आवें, निरुपद्रव स्थानकम ध्यावें ॥ ९ ॥

अर्थ—पर्वत गुफा छिद्र शिला तथा मठ मंदिरोंमें अथवा वनोंमें डांस मच्छर रहित मनुष्य संचार रहित ऐसे स्थानोंमें ध्यानका अभ्यास करो ।

भावार्थ—ध्यानके लिये ऐसा स्थान हो जहां ध्यान भंगके कारण बाधा उपद्रवकी संभावना न हो ।

ध्यानके भेद—

झाणं चउप्पयारं भणंति सव्वजोइणो जियकसाया ।
अट्टं तह रउद्दं धम्मं तह सुक्कझाणं च ॥ १० ॥

ध्यानं चतुःप्रकारं भणन्ति सर्वयोगिनः जितकषायाः ।
आर्तं तथा च रौद्रं धर्मं तथा शुक्लध्यानं च ॥ १० ॥

चौपाई ।

आर्तरौद्रध्यान दुख होई, धर्म शुक्ल दोय शुभ होई ।
ध्यान भेद यों यह है च्यारा, जितकषाय मुनिवर कह सारा ॥ १० ॥

अर्थ–जिन्होंने कषायें जीत ली हैं ऐसे योगीश्वर आर्त-रौद्र, धर्म शुक्ल च्यार प्रकारका ध्यान कहते हैं।

दुर्ध्यान वर्णन—

तंबोलकुसुमलेवणभूसणपियपुत्तचिंतणं अट्टं।
बंधणडहणवियारणमारणचिंता रउद्दंमि ॥ ११ ॥

ताम्बूलकुसुमलेपनभूषणप्रियपुत्रचिन्तन आर्त।
बंधनदहनविदारणमारणचिन्ता रौद्रं ॥ ११ ॥

चौपाई।

पान फूल लेप रु सुत माता, चिंते सो हो आर्त हि ध्याता।
बंधन जालन चीरण घाता, चिंते सो हो रौद्र हि ध्याता ॥११॥

अर्थ–पान पुष्प सुगंधिलेपन भूषण, प्यास, पुत्रादिका चितवन आर्तध्यान है। और बांधना, जलाना, चीरना, मारना इत्यादि चितवन रौद्रध्यान है। अन्यत्र इस प्रकार कहा है—

अपनी प्रिय वस्तु जो धन कुटुम्बादि तिनके वियोगमें उनके मिलनेके लिये बारबार चितवन करना इष्टवियोग आर्तध्यान है। अपनेको दुखदायी दरिद्रता शत्रु आदिके संयोगमें वियोगके लिये चितवन करना अनिष्ट संयोग आर्तध्यान है। अपने शरीरमें रोग इत्यादि होनेपर दूर होनेके लिये बारबार चिन्तवन करना पीडा चिन्तवन आर्तध्यान है और भावी सांसारिक सुखोंके लिये चिन्तवन करना निदान बंध आर्तध्यान है। आर्त अथवा दुखके लिये ध्यान अथवा चितवन सो आर्तध्यान, यह ध्यान छठे गुणस्थान तक होय है, निदान बंधके बिना।

और रौद्रध्यान भी च्यार प्रकार है। १–हिंसानंद कहिये

किसी जीवके बांधने मारने आदिमें आनंद मानना या विचार स्वयं करे । २-मृषानंद कहिये झूठमें आनंद माने या झूठे विचारादि करे । ३-चौर्यानंद कहिये चोरीमें, चोरोंकी कथा आदिमें आनंद माने या स्वयं विचार करना आदि । ४ परिग्रहानंद कहिये धनधान्यादिकमें आनंद माने या इसीके विचारमें रहना यह पंचम गुणस्थान तक होता है. छठेमें हो तो संयम छूट जाय. यह दोनूं दुर्ध्यान पापबन्धके कारण त्याज्य हैं ।

धर्मध्यान, शुक्लध्यान ।

सुत्तत्थमग्गणाणं महव्वयाणं च भावणा धम्मं ।
गयसंकप्पवियप्पं सुक्कज्झाणं मुणेयव्वं ॥ १२ ॥

सूत्रार्थमार्गणानां महाव्रतानां च भावना धर्मं ।
गतसंकल्पविकल्पं शुक्लध्यानं मन्तव्यं ॥ १२ ॥

चौपाई ।

सूत्र अर्थ मार्गण व्रत भाव, धर्मध्यानमें यह सब ध्याव ।
नहिं संकल्प विकल्प जु होई, शुक्लध्यान जानों तुम सोई ॥ १२ ॥

सूत्रार्थ कहिये द्वादशांगरूप जिनवाणी तथा ४ गति, ५ इंद्रिय, ६ काय, १५ योग, ३ वेद, २५ कषाय, ७ संयम, ८ ज्ञान, ४ दर्शन, ६ लेश्या, २ भव्याभव्य, ६ सम्यक्त, २ सैनी—असैनी, २ आहारक अनाहारक ऐसें १४ मार्गणा, ५ महाव्रतोंकी २५ भावना तथा १४ गुणस्थान, १२ भावना, १० धर्म इत्यादि चितवन धर्मध्यान है । संकल्प विकल्प रहित आत्मचिन्तवन शुक्लध्यान है । सो धर्मध्यानके भी च्यार भेद हैं । जिनेन्द्रकी आज्ञाका चितवन—आज्ञाविचय—१ । कर्मोंके उदय किन २ कर्मोंसे कैसे कैसे आते हैं, उनसे

क्या क्या कष्ट होते हैं इनसे छूटनेके उपाय इत्यादि चिन्तवन—अपाय विजय—२। कर्मोके विपाक फलका विचार करना. किस जातके बंधका कैसा उदय होता है. तीव्र मंदादि विचारना—विपाक विचय—३। तीन लोकके आकारका. समवशरणादि रचनाओंका, परमेष्ठीवाचक मंत्रोंकी कमलादि आकृतिमें रचनाका चिन्तवना इत्यादि। संस्थान विचय—४। यह च्यार प्रकार धर्मध्यान है।

शुक्लध्यान च्यार प्रकार है। १—पृथत्त्ववितर्कविचार। जिसमें जुदा जुदा श्रुतका विचार नाम बदलना। भावार्थ—इस ध्यानमें शब्दसे शब्दांतर, अर्थसे अर्थांतर, योगमें योगांतर पलटते रहते हैं। यह ध्यान बारवें गुणस्थान तक होता है और मन वचन काय तीनों योगोंमें बदलता रहता है।

२—एकत्ववितर्क अविचार। ध्यानमें शब्दसे शब्दांतर, अर्थसे अर्थांतर, योगमें योगांतर नहि हो तो मोहनीय कर्म क्षीण होते ही जिस योगमें जिस शब्दमें जिस अर्थ पदार्थमें ध्यान था वही स्थिर हो जाता है। यह ध्यान तेरवें गुणस्थान तक रहता है।

३—सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति। मन वचन कायकी क्रियाको कर सूक्ष्म काय योगमें स्थिर करना यह तेरवें गुणस्थानके अन्तमें आयुकर्मके समान शेष अघातियाओंकी स्थिति करनेके लिये समुद्घात करनेके बाद अथवा अघाति चतुष्क समान स्थितिवाले हों तो विना समुद्घात किये ही तेरवेंके अन्तमें सूक्ष्म काययोगमें आते हैं अर्थात् योग निरोधके समय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है।

४—व्युपरतक्रियानिवर्ति। तेरवेंके लगते ही चौदवें अयोग

शुक्लध्यानमें जबकि आत्मप्रदेशनिमें सूक्ष्मकाय योगकी क्रिया भी रुक जाती है तब होता है–

किस ध्यानसे कौन गति बंधती है सो कहते हैं—

तिरियगई अट्टेण णरयगई तह रउद्दझाणेण।
देवगई धम्मेण सिवगई तह सुक्कझाणेण॥ १३॥

तिर्यग्गतिः आर्तेन नरकगतिः तथा रौद्रध्यानेन।
देवगतिः धर्मेण शिवगतिस्तथा शुक्लध्यानेन॥ १३॥

चौपाई।

हो तिर्यंच आर्त तें जाई, रौद्र थकी नारक गति मांई।
धर्मध्यानतें सुरगति आवै, शुक्लध्यानतें शिवगति पावै॥ १३॥

अर्थ–आर्तध्यानतें जीवके तिर्यंच गति बन्धे है, रौद्रध्यानतें नरकगति, धर्मध्यानतें देवगति व शुक्लध्यानतें मोक्ष पावै है।

अट्टरउद्दं झाणं तिरिक्खणरयगयदुक्खसयपउरणं।
चइऊण कुणह धम्मं सुक्कज्झाणं च किं बहुणा॥ १४॥

आर्तरौद्रं ध्यानं तिर्यङ्नरकदुःखशतप्रचुरं।
त्यक्त्वा कुरु धर्मं शुक्लध्यानं च किं बहुना॥ १४॥

चौपाई।

आर्तरौद्रतैं दुर्गति पाओ, दुःखनकी खानि मन ध्याओ।
धर्म शुक्ल सुखकर ही जानो, तिनि ध्यान शिव मन आनो॥१४॥

अर्थ–आर्तध्यानतें तिर्यंचगति होती है, रौद्रध्यानतें नरकगति होती है और वहां सैकड़ों दुःखोंकी प्राप्ति होती है इसलिये इन दोनों दुर्ध्यानोंको छोड़कर सुखकारी धर्मध्यानको ग्रहण करो। बहुत कहा कहै।

भावार्थ—आर्त रौद्रध्यान दुखकर हैं अतः हेय हैं। धर्मध्यान शुक्लध्यानतें स्वर्ग मोक्ष मिलता है अतः उपादेय है। धर्मध्यान भी संसारका कारण है परन्तु परम्पराय मुक्तिका कारण है, अतः उपादेय है।

अब धर्मध्यानकी विधि कहते हैं—

सामाइयं जिणुत्तं पढमं काऊण परमभत्तीए।
चिंतह धम्मझाणं गलइ मलं जेण सहसत्ति ॥ १५ ॥

सामायिकं जिनोक्तं प्रथमं कृत्वा परमभक्त्या।
चिंतय धर्मध्यानं गलति मलं येन सहसा इति ॥ १५ ॥

चौपाई।

प्रथम परम मुनिगुन करहु, जिन भाषित सामायक धरहू।
धर्मध्यान चिंतो मनमांहीं, नाशै पाप मल सह जांहीं ॥ १५ ॥

अर्थ—प्रथम ही भगवान जिनेन्द्रकी कही हुई सर्व सावद्य विरतिरूप अर्थात् संपूर्ण क्रियाओंके त्यागपूर्वक सामायिक परमभक्तिके साथ ग्रहण करि धर्मध्यानका चिन्तवन करै जिससे कि पापमल शीघ्र नाश हों। सो ही पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

रागद्वेषको त्यागकर, सर्व साम्य अवधार।
तत्व प्राप्तिका मूल अति, सामायिक धरि सार ॥
सामायिक युत जीवके, पाप त्याग ही होय।
चरण मोहके उदय भी, अतः महाव्रत जोय ॥
समता स्तुति अरु वंदना, प्रतिक्रम प्रत्याख्यान।
कायोत्सर्ग जु षट् करो, आवश्यक पहिचान ॥

सुत्तत्थधम्ममग्गणवयगुत्तीसमिदिभावणाईणं।
जं कीरइ चिंतवणं धम्मज्झाणं च इह भणियं ॥ १६ ॥

सूत्रार्थमार्गणमहाव्रतगुप्तिसमितिभावनाभिः ।
यत् क्रियते चिन्तनं धर्मध्यानं च इह भणितं ॥ १६ ॥

चौपाई ।

सूत्र अर्थ अरु मार्गण जोई, गुप्ति समिति भावन है सोई ।
इनका चिन्तवन हो जिम मांही, धर्मध्यान जानो यह थाई ॥ १६ ॥

अर्थ—सूत्रार्थ और १४ मार्गणा; उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य यह दश धर्म; अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रहत्याग ऐसे पांच महाव्रत; मन, वचन, काय तीनोंका वशमें करना सो ३ गुप्ति; ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, आलोकित पान भोजन यह पांच समिति; अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ इन १२ भावनाओंका चिन्तवन सो धर्मध्यान है। तथा और भी जिनोक्त वर्णन है। प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, चरणानुयोग इनका विचारना इत्यादि सब धर्मध्यान हैं।

जीवाइ जे पयत्था कायव्वा ते जहट्ठिया चेव ।
धम्मज्झाणं भणियं रायद्दोसे पमुत्तूणं ॥ १७ ॥

जीवादयो ये पदार्थाः ध्यातव्याः ते यथास्थिताः चैव ।
धर्मध्यानं भणितं रागद्वेषौ प्रमुच्य ॥ १७ ॥

चौपाई ।

जीव अजीव तत्त्व सब ध्यावै, रागद्वेष नाश नहि लावै ।
दृढ मन कर ध्यावै इस जोई, धर्मध्यान जानो यह सोई ॥१७॥

अर्थ—जीवादिक पदार्थ जैसे अवस्थित हैं वैसे रागद्वेष रहित उनके स्वरूपको विचारना सो भी धर्मध्यान है।

झाएह तिप्पयारं अरुहं कम्मिंधणाण णिद्दहणं।
पिंडत्थं च पयत्थं रूवत्थं गुरुपसाएण॥ १८॥

ध्यायत त्रिप्रकारं अर्हं कर्मेंधनानां निर्दहनं।
पिंडस्थं च पदस्थं रूपस्थं गुरुप्रसादेन॥ १८॥

चौपाई।

पिंडस्थ रु पदस्थित भी जोई, रूपस्थित तीजा जो सोई।
इन ये तीनों जानों ध्याना, कर्म जलानेमें परधाना॥ १८॥

अर्थ—पिंडस्थ कहिये प्रतिमारूप, पदस्थ कहिये मंत्ररूप, रूपस्थ कहिये समवशरण विभूति सहित जिनेन्द्रका चितवन, ऐसे तीन प्रकार कर्मोंको भस्म करनेवाला ध्यान है सो गुरुके प्रसादसे जानना।

पिंडस्थ ध्यान—

णियणाहिकमलमज्झे परिट्ठियं विप्फुरंतरवितेयं।
झाएह अरुहरूपं झाणं तं मुणह पिंडत्थं॥ १९॥

निजनाभिकमलमध्ये परिस्थितं विस्फुरद्रवितेजः।
ध्यायते अर्हद्रूपं ध्यानं तत् मन्यस्व पिंडस्थं॥ १९॥

चौपाई।

सूर्य तेज जिम दीप्तिधारी वीतराग अर्हंत चितारी।
नाभिकमल स्थित चिंतै जोई, ध्यान पिंडस्थ जानिये सोई॥१९॥

अर्थ—निज नाभिकमलमें स्थित सूर्य समान तेज कांति धारी अरहंतकी मूर्तिका चितवन करना सो पिंडस्थ ध्यान है।

भावार्थ—अपने नाभिकमल विषै भगवान अरहंतकी अत्यंत तेजकर व्याप्त नासादृष्टि लगाये परिग्रह कामादि विकार रहित पद्मासन या खड्गासन परम वीतराग भावकर युक्त पद्मासनका ध्यान व ऐसे स्वरूप विचारै। दक्षिण पांव स्थापन

बाम हस्तपर दक्षिण हस्त धरै, नासादृष्टि धरै, निश्चल आत्मीक ... स्वरूप निर्लेप निर्मल रूपका चिंतवन करै और खड्गासन मूर्तिका ध्यान करै तो एडीमें तो परस्पर च्यार अंगुलका अंतराल और दोनों भुजायें लंबायमान आगेंके हाथोंसे च्यार अंगुलका अंतर, नहि ज्यादा ऊंचे, नहीं ज्यादा नीचे है गर्दन मस्तक, नासिकाग्र दृष्टि, आंख नहीं अधिक मुद्रित नहीं अधिक खुले, वीतराग ध्यानस्थ ऐसे अर्हत्पर-हीको अपने नाभिकमलमें स्थापित कर ध्यान करै।

झायह णियकुरमज्झे भालयले हिययकंठदेसम्मि ।
जिणरूवं रवितेयं पिंडत्थं मुणह झाणमिणं ॥ २० ॥

ध्यायत निजकरमध्ये भालतले हृदयकंठदेशे ।
जिनरूपं रवितेजः पिंडस्थं मन्यस्व ध्यानमिदं ॥ २० ॥

चौपाई।

कर ललाट और कंठ मांही, इन स्थानोंमें कमल रचा ही ।
यथाजात जिनवर छवि ध्यावै, पिंडस्थिति सोइ नर पावै ॥ २० ॥

अर्थ—सूर्य तेज समान दीप्तिमान जिन प्रतिमा तुल्य जिनेंद्रका रूप ललाटमें अथवा कंठमें हाथमें यथाजात रूप अर्थात् माताके उदरसे निकला जिस रूप नग्न, इन स्थानोंमें ध्यानमें चिंतवन करै सो भी पिंडस्थ ध्यान है।

पदस्थ ध्यानका वर्णन।

अट्ठमवग्गाचउत्थं सत्तमवग्गस्स बीयवण्णेण ।
अक्कंतमुवरि सुण्णं सुसंपुयं मुणह तं तच्चं ॥ २१ ॥

अष्टमवर्गचतुर्थं सप्तमवर्गस्य द्वितीयवर्णेन ।
आक्रांतमुपरि शून्यं सुसंपुटं मन्यस्व तत्त्वं ॥ २१ ॥

चौपाई।

अष्टम वर्ग चतुर्थम लेओ, सप्तमका दूजा युत येओ।
ई मात्रा युत धरहु बिंदु, ह्रीं पदस्थ हीं युत बिंदु ॥ २१ ॥

अर्थ—आठवें वर्गका चोथा अक्षर सातवें वर्गका दूसरा अक्षरसे आक्रांत उपर शून्य बीज जो ईकार इनसे युक्तका ध्यान करो अर्थात् आठवा वर्ग श ष स ह तामें चोथा (ह) सातवां वर्ग य र ल व जिसका द्वितीय अक्षर (र) करि दबावि युक्त करै तब ह्र तिसमें बीजाक्षर ई स्वर बिंदुयुक्त किये चंद्रयुक्त (ह्रीं) इस मंत्रका ध्यान करना पदस्थ ध्यान है।

एयं च पंच सत्तय पणतीसा जहकमेण सियवण्णा।
झायह पयत्थझाणं उवइट्ठं जोयजुत्तेहिं ॥ २२ ॥

एक च पंच सप्त पञ्चत्रिंशत् यथाक्रमेण सितवर्णाः।
ध्यायत पदस्थध्यानं उपदिष्टं योगयुक्तैः ॥ २२ ॥

चौपाई।

एक पांच वर्णों जु होई, सात और पैंतीस हु सोई।
ध्यान पदस्थ हि भेद पिछानो, आतमध्यानी कह यूं मानो ॥ २२ ॥

अर्थ—एक पांच सात पैंतीस अक्षरवाले अध्यात्मध्यानी योगियों करि कहे हुए मंत्र यथाक्रमसें ध्याना पदस्थ ध्यान है।

भावार्थ—एकाक्षरी ॐ अथवा ह्रीं पंचाक्षरी अर्हद्भ्यो नमः अथवा अ सि आ उ सा अथवा नमः सिद्धेभ्यः। सप्ताक्षरी णमो अरहन्ताणं अर्हत्सिद्धेभ्यो नम, पैंतीस अक्षरी णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं जो कि यह पञ्चपरमेष्ठीके वाचक हैं तिनका ध्यान करना पदस्थ ध्यान है। अरहन्त अशरीर आचार्य उपाध्याय साधु इनके आदि अक्षरसे अ सि आ उ सा

पञ्चपरमेष्ठी वाचक है और अर्हन्त, अशरीर, आचार्य, उपाध्याय, मुनि इनके प्रथमाक्षर अ आ उ म् इनके व्याकरणसे संधि साधनेसे अ अ का आ होता है, फिर आ आ में अगला अक्षर लोप करनेपर आ और उ की संधि ओ और म् ॐ पञ्चपरमेष्ठी वाचक है और मंत्र स्पष्ट पंचपरमेष्ठी वाचक है ही।

मुणिसंखा पंचगुणा खणवाई सह य पवणगयणंता ।
एदे य धवलवण्णा कायव्वा झाणमग्गेण ॥ २३ ॥

मुनिसंख्या पंचगुणा.. ...तथा च पवनगगनान्ताः ।
एते च धवलवर्णा ध्यातव्याः ध्यानमार्गेण ॥ २३ ॥

चौपाई ।

पांच सात गुणते जो पाँव, पांच पांच गुण इक द्वय ध्यावँ ।
धवल रंग निर्मल जो ध्याव, ध्यान मार्ग है यह सब सारे ॥ २३ ॥

अर्थ—सातसे गुणित पांच पैंतीस अक्षरी उपरोक्त णमोकार मंत्र पांचसे गुणित पांच पच्चीस अक्षरी ॐ अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपञ्चपरमेष्ठिभ्यो नमः और १० अक्षरी ॐ दो अक्षरी सिद्ध ऐसे भी ध्यान मार्गसे ध्यान करनेसे पदस्थ ध्यान होता है। सो ही द्रव्य संग्रहमें नेमिचंद्र सिद्धान्त चक्रवर्तिने कहा है। पणतीस सोल छप्पण, चदु दुग मेगं च ज्ञवह झाएह । परमेट्ठि वा चयाणं अण्णं च गुरु'वएसणे णिरहो ३५–१६–६ ५–४–२–१ एक अक्षर रूप मंत्र पंचपरमेष्ठी वाचक है तिनका ध्यान करै। और भी गुरु उपदेशित ध्यान करै. षोडशाक्षरी अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः षडाक्षरी ॐ नमः सिद्धेभ्यः। चतुराक्षरी ॐ नमोस्तु अथवा अरहन्त, शेष ऊपर कह चुके।

णिसिऊण पंचवण्णा पंचसु कमलेसु पंचठाणेसु।
झाएह जहकमेण पयत्थझाणं इमं भणियं ॥ २४ ॥

निर्मुक्ता पंचवर्णान् पंचसु कमलेषु पंचस्थानेषु।
ध्यायत यथाक्रमेण पदस्थध्यानं इदं भणितं ॥ २४ ॥

चौपाई।

मस्तक मुख ललाट उर मांही, नाभियुक्त पांचों स्थल मांही।
मंत्र कल्पना करके ध्यावे, ध्यान पदस्थ यों भी नर पावे ॥ २४ ॥

अर्थ–पांचों वर्णोंको क्रमसे मस्तक, ललाट, मुख, हृदय, नाभिमें वर्णके कमल रचकर उनमें स्थापित कर ध्यान करना सो भी ध ध्यान कहा है।

भावार्थ–णमोकार मंत्रके पांच पदोंको वा पांच अक्षरी मंत्रको ों स्थान पांच वर्णके कमल रच उनमें स्थापित कर ध्यान करना पदस्थ ध्यान है।

सत्तक्खरं च मंतं सत्तसु ठाणेसु णिसिसुसयवण्णं।
सिद्धसरूवं च सिरे एयं च पयत्थझाणुत्ति ॥ २५ ॥

सप्ताक्षरं च मंत्रं सप्तसु स्थानेषु...
सिद्धस्वरूपं शिरसि एतच्च पदस्थध्यानमिति ॥ २५ ॥

चौपाई।

कंठ हाथ मुख सातों स्थलमें, धरि सातके सात कमलमें।
सप्ताक्षरी मंत्र को भजिहै, धर पदस्थ कर्म मल तजिहै ॥ २५ ॥

अर्थ–सप्ताक्षरी मंत्रको मस्तक, ललाट, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि इन सात स्थानोंमें सात रङ्गके कमल रच उनमें क्रमसे सातों अक्षरोंको स्थापन करै और मस्तकपर सिद्ध स्वरूपके साथ ध्यान करै सो भी पिंडस्थ ध्यान है।

अट्ठदलकमलमज्झे अरुहं वेढेह परमवीयेहिं ।
पत्तेसु तहय वण्णा दलंतरे सत्तवण्णा य ॥ २६ ॥
गणहरवलयेण पुणो मायाविएण धरयलकंतं ।
जं जं इच्छइ कम्मं सिज्झइ तं तं खणद्धेण ॥ २७ ॥

अष्टदलकमलमध्ये अर्हं वेष्टय परमबीजैः ।
पत्रेषु तथा च वर्णा दलान्तरे सप्तवर्णाश्च ॥ २६ ॥
गणधरवलयेन पुनः मायाबीजेन धरातलाक्रान्तं ।
यद्यत् इच्छति कर्म सिध्यति तत्तत् क्षणार्धेन ॥ २७ ॥

चौपाई ।

अर्हं बीच कर्णीमें धारे, पत्रोंमें बीजाक्षर सारे ।
मंत्र सप्तवर्णी दल धारे, आगे और सुणो विस्तारे ॥ २६ ॥
गणधर वेष्टित फिर सो होई, माया बीज मयी हू सोई ।
हावे पृथ्वी मंडलमें ही, अर्द्ध पलकमें सिद्धी लेही ॥ २७ ॥

अर्थ—अष्टदल कमलके बीचमें अर्हं लिखकर बीजाक्षरोंको पत्रोंमें लिखे और सप्ताक्षरी मंत्रको वेष्टित करे फिर गणधरोंको वलयाकार वेष्टित करे फिर माया बीजाक्षरोंसे वेष्टित करे सो क्षणार्द्धमें सर्व कार्य सिद्ध हो । (सूचना) मायाबीज, बीजाक्षर, पृथ्वीमंडल यह मंत्रशास्त्रकी संज्ञा है इसलिये इन अक्षरोंका खुलासा नहीं किया गया । इसलिये वाचकगण क्षमा करे । यह गणधरवलय यंत्र है ।

रूपस्थ ध्यान ।

घणघायिकम्ममहणो अइसहवरपाडिहेरसंयुत्तो ।
झाएह धवलवण्णो अरहंतो समवसरणत्थो ॥ २८ ॥

घनघातिकर्ममथनः अतिशयवरप्रातिहार्यैस्संयुक्तः ।
ध्यायत धवलवर्णो अर्हंतो समवसरणस्थः ॥ २८ ॥

चौपाई।

घाती कर्म विना जिनराई, अतिशय प्रातिहार्य जुत सोई।
समवसरनमें स्थित को ध्यावे, सो रूपस्थ सु ध्यान कहावे ॥ २८ ॥

अर्थ—सकल घातिया कर्म विनाशकर चोतीस अतिशय, आठ प्रातिहार्य सहित समवसरणमें विराजमान मनरूवर्ण अर्हत् परमेष्टीका चित्तमें ध्यान करना सो रूपस्थ ध्यान है। अन्य ग्रन्थोंमें रूपातीत ध्यानका भी वर्णन किया है उसमें अशरीर, अमूर्तीक, ज्ञान दर्शन चैतन्य इत्यादि सिद्धस्वरूपका ध्यान सो रूपातीत ध्यान बताया है।

अप्पा तिविहपयारो बहिरप्पा अंतरप्प परमप्पा।
जाणइ णाण सरूवं गुरुउवदेसेण किंबहुणा ॥ २९ ॥

आत्मा त्रिविधप्रकारो बहिरात्मा अंतरात्मा परमात्मा।
जानीहि तेषां स्वरूपं गुरूपदेशेन किंबहुना ॥ २९ ॥

चौपाई।

अंतरातम बहिरातम होई, तीजा परमातम भी होई।
तीनोंका अब वर्णन यो है, समझ इनका हित कर जो है ॥ २९ ॥

अर्थ—बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा ऐसे तीन प्रकारके आत्मा है। इनका स्वरूप गुरु उपदेससे अच्छीतरह समझो। और बहुत उपदेशसे क्या?

मयमोहमाणसहिओ रायद्दोसेहिं णिच्च संतत्तो।
विसएसु तहा गिद्धो बहिरप्पा भण्णए एसो ॥ ३० ॥

मदमोहमानसहितः रागद्वेषैः नित्य संतप्तः।
विषयेषु तथा गृद्धः बहिरात्मा भण्यते एषः ॥ ३० ॥

चौपाई।

मोह मद मानायुत होई, राग द्वेष कर युत जो होई।
विषयोंमें यु रते सोई, बहिरातम ...

अर्थ—मद मोह (मिथ्यात) मान राग द्वेषसे सदा व्यस्त विषयोंमें सदा आसक्त ऐसा मिथ्यादृष्टि जीव बहिरात्मा है।

भावार्थ—आठ प्रकारके मदयुक्त पंचप्रकार मिथ्यात्वयुक्त अनंतानुबंधी राग, अनंतानुबंधी द्वेष, मायावी, असंयत विषयलंपटी जीव बहिरात्मा है। यहां मोह शब्दसे मिथ्यात्व ग्रहण किया है क्योंकि चारित्रमोहनीयकी प्रकृति मान मायादि पृथक् बताई है।

धम्मज्झाणं झायदि दंसणणाणेसु परिणदो णिच्चं।
सो भणइ अंतरप्पा लक्खिज्जइ णाणवंतेहिं ॥ ३१ ॥

धर्मध्यानं ध्यायति दर्शनज्ञानेषु परिणतः नित्यं।
सः भण्यते अन्तरात्मा लक्ष्यते ज्ञानवद्भिः ॥ ३१ ॥

चौपाई

धर्म ध्यान सदा चित है जोई, सम्यग्दर्शन ज्ञान युत होई।
आत्मज्ञानयुत है जो कोई, अंतरात्म जानो वह होई ॥ ३१ ॥

अर्थ—धर्म ध्यानको ध्याता है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानमें सदा परिणति रखता है उसको ज्ञानवान अंतरात्मा कहते हैं।

भावार्थ—पहले कहे हुए च्यार प्रकार धर्मध्यानका चिंतवन करै। निःशंकितादि आठ अंग सहित आठ मद, तीन मूढता, षट् अनायतन रहित शुद्ध तत्त्वार्थश्रद्धान सो सम्यग्दर्शन है। संशय विभ्रम मोह रहित अष्टांग सम्यग्ज्ञानका धारी सो सम्यग्दृष्टि अंतरात्मा है। सोई पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

अष्ट अंगका स्वरूप।

दोहा।

जिनमत वस्तु समूहको, अनेकांत दरसाय।
किमु सत्य असत्य है, ऐसे नहिं शंकाय ॥ २३ ॥

इस भवके विभवादिको, परभव चक्री आदि।
एकांती पर समय भी, इच्छत नांहि प्रमादि ॥ २४ ॥

क्षुधा तृषा शीतादि जो, नानाविध हैं भाव।
विष्टा आदि पदार्थमें, विचिकित्सा न लगाव ॥ २५ ॥

शास्त्राभास सु लोकमें, समय देवता भास।
इनमें तत्व विचार कर, मूरख दृष्टि विनाश ॥ २६ ॥

उपगूहन गुणके लिये, मार्दवादिको धार।
चेतन धर्म बढाइये, ढकि परदोष विचार ॥ २७ ॥

कामरु क्रोध मदादिसे, न्याय मार्ग चल जांहि।
स्थिति करना निज धर्ममें, सो थितिकरण कहांहि ॥ २८ ॥

शिव-सुख कारण दयामय, धर्म अहिंसा धार।
अरु सहधर्मिनके विषै, वत्सलता उर धार ॥ २९ ॥

रत्नत्रयके तेजसे, चेतन करतु प्रकाश।
पूजन दान तपादिसें, धर्म प्रभाव विकाश ॥ ३० ॥

ऐसे अष्ट अंग युक्त सम्यग्दृष्टी होता है सो ही रत्नकरंड-श्रावकाचारमें भी कहा है—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टांगं सम्यग्दर्शनमस्मयम् ॥ ४ ॥

अर्थ—तीन मूढता रहित, आठ अंग सहित, आठ मद रहित, सत्यार्थ देव शास्त्र गुरुका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है जिसमें आठ अंगका स्वरूप ऊपर बताया। अब तीन मूढताको कहते हैं—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२

अर्थ—नदी समुद्रमें स्नान करना, बालू रेत पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना, अग्नि प्रवेश, इनमें धर्म मानना लोकमूढ़ता है।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—वर होनेकी कामनासे राग द्वेषसे मैले ... जो उपासना है वह देवमूढ़ता कही है ।

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४

अर्थ—परिग्रह, आरंभ और हिंसा सहित संसारचक्रमें पाखंडियोंका सत्कार करना पाखंडमूढ़ता है ।

भावार्थ—परिग्रही, आरंभी, स्वयं संसारमें फंसे हुएसे ... उद्धार क्या करेंगे ।

सच्चे देवका लक्षण ।

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—क्षुधा प्यास बुढ़ापा रोग जन्म मरण भय मान राग और मोह मद जिनके नहीं हैं और न ये चिन्ता पसीना और ... हास्य कामादि जिनके नहीं है सो सच्चा आप्त अर्थात् देव कहा ।

सत्यार्थ शास्त्रका लक्षण ।

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

अर्थ–ऊपर कहे हुए लक्षणवाले आप्त द्वारा कहा हो, वादी प्रतिवादीसे अखंडित जो कि प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणसे अबाधित सत्यार्थ तत्वोंका उपदेशवाला प्राणीमात्रका हितकारी कुमार्गका खंडन करनेवाला शास्त्र होता है।

सत्यार्थ गुरुका लक्षण।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥ १० ॥

अर्थ–विषयवासना रहित, आरम्भ परिग्रह रहित, ज्ञान ध्यान और तपमें आसक्त ऐसा वह तपस्वी सराहनीय है। ऐसे सत्यार्थ आप्त आगम गुरु श्रद्धानपूर्वक पूजनीय है।

आठ मद।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥
स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥ २६ ॥

अर्थ–ज्ञान पूजा कुल जाति बल ऋद्धि तप शरीर, इन आठोंके आश्रित घमंड करना मद है। जो पुरुष घमंडसे अन्य धर्मात्माओंका अपमान करता है वह अपने धर्मका अपमान करता है। क्योंकि धर्मात्माओंके बिना धर्म नहीं होता। ऐसे आठ अंग सहित और आठ मद तीन मूढ़ता रहित, सच्चे देव शास्त्र गुरुका और इनके द्वारा उपदेशित सत्यार्थ तत्वोंका श्रद्धान कर आत्मस्वरूपको प्राप्त होना ही सम्यक्त है। सम्यक्त सहित जीव अन्तरात्मा है। सम्यग्ज्ञानके लिये पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहा है—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥

अर्थ–नदी समुद्रमें स्नान करना, बालू रेत पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना, अग्नि प्रवेश इनमें धर्म मानना लोकमूढ़ता कहलाती है।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ–भला होनेकी कामनासे राग द्वेषसे मैले देवताओंकी जो उपासना है वह देवमूढ़ता कही है।

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥

अर्थ–परिग्रह, आरंभ और हिंसा सहित संसारचक्रमें पड़े हुए पाखंडियोंका सत्कार करना पाखंडमूढ़ता है।

भावार्थ–परिग्रही, आरंभी, स्वयं संसारमें फंसे हुएसे दूसरोंका उद्धार क्या करेंगे।

सच्चे देवके लक्षण।

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अर्थ–क्षुधा प्यास बुढ़ापा रोग जन्म मरण भय मान राग द्वेष और मोह यह जिनके नहीं हैं और च से चिंता पसीना और ग्लानि हास्य कामादि जिनके नहीं हैं सो सच्चा आप्त अर्थात् देव कहा जाता है।

सत्यार्थ शास्त्रका लक्षण।

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए लक्षणवाले आप्त द्वारा कहा हो, वादी प्रतिवादीसे अखंडित जो कि प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणसे अबाधित सत्यार्थ तत्वोंका उपदेशवाला प्राणीमात्रका हितकारी कुमार्गका खंडन करनेवाला शास्त्र होता है।

सत्यार्थ गुरुका लक्षण।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते॥ १०॥

अर्थ—विषयवासना रहित, आरम्भ परिग्रह रहित, ज्ञान ध्यान और तपमें आसक्त ऐसा वह तपस्वी सराहनीय है। ऐसे सत्यार्थ आप्त आगम गुरु श्रद्धानपूर्वक पूजनीय है।

आठ मद।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः॥ २५॥
स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना॥ २६॥

अर्थ—ज्ञान पूजा कुल जाति बल ऋद्धि तप शरीर, इन आठोंके आश्रित घमंड करना मद है। जो पुरुष घमंडसे अन्य धर्मात्माओंका अपमान करता है वह अपने धर्मका अपमान करता है। क्योंकि धर्मात्माओंके बिना धर्म नहीं होता। ऐसे आठ अंग सहित और आठ मद तीन मूढ़ता रहित, सच्चे देव शास्त्र गुरुका और इनके द्वारा उपदेशित सत्यार्थ तत्वोंका श्रद्धान कर आत्मस्वरूपको प्राप्त होना ही सम्यक्त है। सम्यक्त सहित जीव अन्तरात्मा है। सम्यग्ज्ञानके लिये पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहा है—

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम् ।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ २२ ॥

अर्थ—नदी समुद्रमें स्नान करना, वालू रेत पत्थरोंका ढेर करना, पर्वतसे गिरना, अग्नि प्रवेश, इनमें धर्म समझना लोकमूढ़ता कहलाती है।

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसः ।
देवता यदुपासीत देवतामूढमुच्यते ॥ २३ ॥

अर्थ—भला होनेकी कामनासे राग द्वेषसे मैले देवताओंकी जो उपासना है वह देवमूढ़ता कही है ।

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्तवर्तिनाम् ।
पाखण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाखण्डिमोहनम् ॥ २४ ॥

अर्थ—परिग्रह, आरंभ और हिंसा सहित संसारचक्रमें पड़े हुए पाखंडियोंका सत्कार करना पाखंडमूढ़ता है ।

भावार्थ—परिग्रही, आरंभी स्वयं संसारमें फंसे हुएसे दूसरोंका उद्धार क्या करेंगे ?

सच्चे देवके लक्षण ।

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः ।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः सः प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—क्षुधा प्यास बुढ़ापा रोग जन्म मरण भय मान राग द्वेष और मोह यह जिनके नहीं है और न स चिंता पसीना और ग्लानि हास्य कामादि जिनके नहीं है सो सच्चा आप्त अर्थात् देव कहा जाता है।

सत्यार्थ शास्त्रका लक्षण ।

आप्तोपज्ञमनुल्लंघ्यमदृष्टेष्टविरोधकम् ।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं शास्त्रं कापथघट्टनम् ॥ ९ ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए लक्षणवाले आप्त द्वारा कहा हो, वादी प्रतिवादीसे अखंडित जो कि प्रत्यक्ष परोक्ष प्रमाणसे अबाधित सत्यार्थ तत्वोंका उपदेशवाला प्राणीमात्रका हितकारी कुमार्गका खंडन करनेवाला शास्त्र होता है।

सत्यार्थ गुरुका लक्षण।

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी सः प्रशस्यते ॥ १० ॥

अर्थ—विषयवासना रहित, आरम्भ परिग्रह रहित, ज्ञान ध्यान और तपमें आसक्त ऐसा वह तपस्वी सराहनीय है। ऐसे सत्यार्थ आप्त आगम गुरु श्रद्धानपूर्वक पूजनीय है।

आठ मद।

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥ २५ ॥
स्मयेन योऽन्यानत्येति धर्मस्थान् गर्विताशयः।
सोऽत्येति धर्ममात्मीयं न धर्मो धार्मिकैर्विना ॥ २६ ॥

अर्थ—ज्ञान पूजा कुल जाति बल ऋद्धि तप शरीर, इन आठोंके आश्रित घमंड करना मद है। जो पुरुष घमंडसे अन्य धर्मात्माओंका अपमान करता है वह अपने धर्मका अपमान करता है। क्योंकि धर्मात्माओंके विना धर्म नहीं होता। ऐसे आठ अंग सहित और आठ मद तीन मूढ़ता रहित, सच्चे देव शास्त्र गुरुका और इनके द्वारा उपदेशित सत्यार्थ तत्वोंका श्रद्धान कर आत्मस्वरूपको प्राप्त होना ही सम्यक्त है। सम्यक्त सहित जीव अन्तरात्मा है। सम्यग्ज्ञानके लिये पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

दोहा।

सम्यक्ती निज हितेच्छु, निर्मल सम्यग्ज्ञान।
आम्नाय अरु युक्तितैं, भजै तजै कुज्ञान ॥ ३१॥
दर्शन सहभावी तदपि, पृथ गारा धन इष्ट।
इनमें लक्षण भेदतैं, जुदा ज्ञान उपदिष्ट ॥ ३२॥
कारज सम्यग्ज्ञान है, कारण सम्यग्दर्श।
तातैं ज्ञान आराधना, दर्शन अन्त प्रदर्श ॥ ३३॥
दीपक और प्रकाश जिम, एक काल उत्पाद।
तिम दर्शन अरु ज्ञानका, कारण कारज साध ॥ ३४॥
सदनेकान्ती तत्वमें, करहु अध्यवसाय।
तजि संशय भ्रम मोहको, आतमरूप लखाय ॥ ३५॥
शब्दार्थो भय काल नुति, सोपधान बहुमान।
युक्त अनिह्नव आठ युत, धारो सम्यग्ज्ञान ॥ ३६॥

ऐसैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानयुक्त जीव अन्तरात्मा है।

परमात्माका स्वरूप—

दुविहो तह परमप्पा सयलो तह णिक्कलोत्ति णायव्वो।
सयलो अरुहसरूवो सिद्धो पुणु णिक्कलो भणिओ ॥ ३२ ॥

द्विविधः तथा परमात्मा सकलः तथा निष्कल इति ज्ञातव्यः।
सकलो अर्हत्स्वरूपः सिद्धः पुनः निष्कलः भणितः ॥ ३२ ॥

चौपाई।

सकल शरीर सहित अरहंता, सकल सिद्ध हीं तन विनशंता।
यह दोनों परमातम जानों, है इनकूर नहीं कछु छानो ॥ ३२ ॥

अर्थ-सो परमात्मा सकल कहिये शरीर सहित और निकल कहिये शरीर रहित दो प्रकार हैं। सकल परमात्मा घातिया कर्म चतुष्टय रहित अनन्तदर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य, चतुष्टययुक्त समवसरण लक्ष्मी सहित अरहन्त है। और निकल परमात्मा शरीर रहित चरम शरीरते कुछ न्यून और अनंत गुणोंका पुंज अतिन्द्रिय सुखयुक्त उर्द्धगमन स्वभावते सिद्धालयमें यावत् गमन सहकारी धर्मद्रव्य है तहां लोकके अन्त उर्द्धभागमें निश्चल स्थित है। उत्पाद व्यय-ध्रौव्ययुक्त सुख सत्ता अवबोध चेतन इन चार प्राणोंयुक्त जीवत्वगुण सहित है।

जरमरणजम्मरहिओ कम्मविहीणो विमुक्कवावारो।
चउगइगमणागमणो णिरंजणो णिरुवमो सिद्धो॥ ३३॥

जरामरणजन्मरहितः कर्मविहीनः विमुक्तव्यापारः।
चतुर्गतिगमनागमनः निरञ्जनो निरुपमः सिद्धः॥ ३३॥

चौपाई।

जन्म जरा मृति रोग विनाशी, कर्म क्रिया विन शिवके वासी।
निश्चलरूप निरंजन सोई, गमनागमन रहा नहिं कोई॥ ३३॥

अर्थ-बुढ़ापा मरण जन्मरहित कर्मरहित व्यापार रहित गमनागमन रहित निरंजन रूप रहित सिद्ध है सो ही परमात्मा हैं।

परमट्ठगुणेहिं जुदो अणंतगुणभायणो णिरालंबो।
णिच्छेओ णिब्भेओ अणंदिदो मुणह परमप्पा॥ ३४॥

परमाष्टगुणैः युक्तः अनन्तगुणभाजनः निरालम्बः।
निश्छेदः निर्भेदः आनंदितो मन्यस्व परमात्मा॥ ३४॥

चौपाई।

परमारथ गुण आठों धारे, गुण अनंत युत शुद्ध निहारे।
निर आलंब सुखी स्वाधीनो, ऐसे परमातम रूप लीनो॥ ३४॥

अर्थ—सम्यक्त दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य, सूक्ष्मत्व, अव्याबाध, अगुरुलघुत्व इन आठ परमार्थ गुणों सहित और अनेक गुणों युक्त निःप्रदाय और नित्य आनन्दमयी सिद्ध परमात्मा जानो।

इस परमात्माके ध्यानका स्वरूप—

अप्पा दिणयरतेओ णाणमओ णाहिकमलमज्झत्थो ।
णिच्चिंतो णिद्दंदो झायव्वो झाणजुत्तीए ॥ ३५ ॥

आत्मा दिनकरतेजाः ज्ञानमयो नाभिकमलमध्यस्थः ।
निश्चिन्तो निर्द्वंद्वः ध्यातव्यः ध्यानयुक्त्या ॥ ३५ ॥

चौपाई।

सूर्य तेज जिम ज्ञान सरूपी, नाभिकमलमें स्थित चैतन्य स्वरूपी।
तज चिंता निर्द्वंद्व भनी है, परमातमको ध्याय धनी है ॥ ३५ ॥

अर्थ—सूर्य समान ज्ञान तेज युक्त चिंता रहित कर्म द्वंद्वरहित ऐसे परमात्माको नाभिकमलमें स्थापित करि योगीश्वर ध्यान करैं।

पाहाणम्मि सुवण्णं कट्ठे अग्गी विणा पओएहि ।
ण जहा दीसंति इमा झाणेण विणा तहा अप्पा ॥ ३६ ॥

पाषाणे सुवर्णं काष्ठे अग्नि विना प्रयोगैः ।
न यथा दृश्यते इमानि ध्यानेन विना तथा आत्मा ॥ ३६ ॥

चौपाई।

पत्थरमें जैसें है सोना, यथा काष्ठमें अग्नि होना।
विना प्रयोगके नाहीं लखिये, ध्यान विना तिम आत्म परखिये ॥३६॥

अर्थ—जैसें पाषाणमेंसे सुवर्ण काष्ठमें अग्नि विना प्रयोगके नहीं दीखते तैसें ध्यान विना आत्माके दर्शन नहीं होते। ध्यानसे ही आत्माका शुद्ध प्रतिभास होता है।

किं बहुणा सालंबं झाणं परमत्थएण णाऊणं ।
परिहरइ कुणह पच्छा झाणब्भासं णिरालंबं ॥ ३७ ॥

किं बहुना सालंबं ध्यानं परमार्थेन ज्ञात्वा ।
परिहर कुरु पश्चात् ध्यानाभ्यासं निरालंबं ॥ ३७ ॥

चौपाई ।

ध्यान अलंबनको हू त्यागो, निरालंब ध्यानमें लागो।
बहु प्रलापसे क्या है योगी, निरालंबसे सिद्धि होगी ॥ ३७ ॥

अर्थ—बहुत कथनसे क्या, परमार्थरूपसे आलंबन ध्यानका भी त्यागकर निरालंब ध्यानका अभ्यास करो ।

भावार्थ—आलंब ध्यान तो ध्यानका अभ्यास बढ़ानेके लिये है। पुण्य बन्धका कारण है। पाप क्रियाओंसे मनको रोक पुन्य क्रियाओंमें लगानेके लिये हैं। फिर अभ्यास करते करते पुन्यानुबंधी धर्मध्यानको छोड़ कर्म निर्जराका कारण निरालंब शुद्धध्यानमें लगाना परमार्थ ध्यान है।

जह पढमं तह बिदियं तदियं णिस्सेणियव्व चडमाणो ।
पावइ समुच्चठाणं तह जोई थूलदो सुण्णं ॥ ३८ ॥

यथा प्रथम तथा द्वितीय तृतीयं निश्रेणिकायां चढमानः ।
प्राप्नोति समुच्चस्थानं तथा योगी स्थूलतः शून्यं ॥ ३८ ॥

चौपाई ।

एक दोय त्रयको क्रम रीती, उच्च स्थान पावे रिपु जीती ।
तैसें स्थूल ध्यानको ध्याता, क्रमसे शून्य ध्यानको पाता ॥ ३८ ॥

अर्थ—जैसें क्रमसे एक दो तीन इत्यादि शत्रुओंको जीत सर्व साम्राज्यका स्वामी होता है उस ही प्रकार आलंबन युक्त जो स्थूल ध्यान उसको ध्याता योगी क्रमसे शून्य ध्यानको भी ध्याने लगता है।

सुण्णज्झाणे णिरओ चइयणिस्सेसकरणवावारो ।
परिरुद्धचित्तपसरो पावइ जोई परं ठाणं ॥ ३९ ॥

शून्यध्याने निरतः त्यक्तनिःशेषकरणव्यापारः ।
परिरुद्धचित्तप्रसरः प्राप्नोति योगी परं स्थानं ॥ ३९ ॥

चौपाई ।

शून्य ध्यानमें रत यह योगी, दूर करै सब क्रिया त्रियोगी ।
रोकत चित्त वेग सब सारा, परम स्थान पावै भव पारा ॥ ३९ ॥

अर्थ—संपूर्ण इन्द्रिय व्यापारको रोककर अपने निज चित्तमें स्थिर हो चित्तके वेगको रोकता हुआ शून्य ध्यान—रत योगी परम स्थानको प्राप्त कर लेता है ।

अन्य अज्ञानियों द्वारा अन्यथा माने हुए शून्य ध्यानका निषेध—

सुण्णं च विविहभेयं भणियं अ बुहेहिं गयणमवियप्पं ।
तह दव्वपज्जभावं महदयारं च सिर रहियं ॥ ४० ॥

शून्य च विविधभेद भणित च बुधैः गगनमविकल्प ।
तथा द्रव्यपर्ययमावे . ...॥ ४० ॥

चौपाई ।

निज पर्याय द्रव्यको ध्यावो, तेज रहित आकाश बतावो ।
ऐसे गगन ध्यानको कोई, मूर्ख अनेक शून्य कह सोई ॥ ४० ॥

अर्थ—कितने ही अज्ञानी बहुत प्रकारका बतलाते हैं जैसे द्रव्य पर्याय ज्ञानरहित तेजो विकार रहित कल्पना रहित आकाश तत्वका ध्यान करना शून्य ध्यान होता है ।

सत्यार्थ शून्य ध्यानका वर्णन करते हैं—

रायाईहि विमुक्कं गयमोहं तत्तपरिणदं णाणं ।
जिणसासणम्मि भणियं सुण्णं इय एरिसं मुणह ॥ ४१ ॥

रागादिभिः विमुक्तः गतमोह तत्त्वपरिणतं ज्ञानं ।
जिनशासने भणित शून्यं इदमीदृशं मनुत ॥ ४१ ॥

चौपाई ।

राग द्वेष मोह तज ध्यावै, परिणति तत्वरूप ही पावै।
जिनमत वर्णित सो ही जानो, शून्य ध्यान ताको पहिचानो ॥४१॥

अर्थ—रागद्वेष मोह कहिये मिथ्यात रहित तत्व परिणतिरूप ध्यान ही जिनमतमें शून्य ध्यान कहा है।

इंदियविसयादीदं अमंततंतं अधेयधारणियं ।
णहसरिसंपि ण गयणं तं सुण्णं केवलं णाणं ॥ ४२ ॥

इन्द्रियविषयातीत अमन्त्रतन्त्र अध्येयधारणाकं ।
नभःसदृशमपि न गगनं तत् शून्य केवलं ज्ञान ॥ ४२ ॥

चौपाई।

इन्द्रिय विषयहू जामें नाहीं, मंत्र स्मर्ण नहिं तामधि पाहीं।
ध्येय धारणा स्मर्णन तामें, केवल आत्मज्ञान ही तामें ॥ ४२ ॥

अर्थ—जिस ध्यानमें न तो इन्द्रिय विषय है न मंत्र स्मरण है। न कोई ध्यान करनेकी वस्तु है, न कोई धारणा स्मरण है, केवलज्ञान परिणति ही है सो शून्य ध्यान है।

णाहं कस्सवि तणओ ण को वि मे अत्थि अहं च एगागी।
इय सुण्णझाणणाणे लहेइ जोई परं ठाणं ॥ ४३ ॥

नाहं कस्यापि तनयः न कोपि मे अस्ति अहं च एकाकी ।
इति शून्यध्यानज्ञाने लभते योगी परं स्थानं ॥ ४३ ॥

चौपाई।

न मैं किसीका, न मेरा कोई, मैं एकाकी।
पाता है योगी परमस्थान, भीतर शून्य ज्ञान ध्यान ॥ ४३ ॥

अर्थ—न तो मैं किसीका पुत्र हूं और न मेरा कोई पुत्र है। मैं तो सिर्फ अकेला हूं। इस प्रकार विचार करके योगी शून्य ज्ञान ध्यानमें लीन होकर परमस्थान—श्री सिद्ध अवस्थाको प्राप्त होजाता है।

मणवयणकायमच्छरममत्ततणुधणकणाइ सुण्णोऽहं ।
इय सुण्णझाणजुत्तो णो लिप्पइ पुण्णपावेण ॥ ४४ ॥

मनवचनकायमत्सरममत्वतनुधनकणादिभिः शून्योऽहं ।
इति शून्यध्यानयुक्तः न लिप्यते पुण्यपापेन ॥ ४४ ॥

चौपाई।

मन वच तन मत्सर माया, ममता मोह क्रोध सुत काया।
जुदा आत्म इनतें जब ध्यावे, पाप पुन्य बंधन नहिं पावे ॥ ४४ ॥

अर्थ—मन, वचन, तन, मत्सर, माया, ममता, मोह, क्रोध, पुत्र, काया इन सबसे आत्माको अलग ध्यावे तो योगी पाप पुन्यसे नहीं लिपता।

सुद्धप्पा तणुमाणो णाणी चेदणगुणोहमेकोऽहं ।
इय झायंतो जोई पावइ परमप्पयं ठाणं ॥ ४५ ॥

शुद्धात्मा तनुमात्रः ज्ञानी चेतनगुण. अहम् एकः अहं ।
इति ध्यायन् योगी प्राप्नोति परमात्मके स्थान ॥ ४५ ॥

चौपाई।

मैं शुद्धातम ज्ञानमयी हूं, चित्स्वरूप एकमें ही हूं।
ऐसैं ध्याता योगी पावै, परम स्थान सुखिया हो जावै ॥ ४५ ॥

अर्थ—मैं शरीरप्रमाण शुद्ध आत्मा हूं, ज्ञानी हूं, चैतन्य गुणका धारी हूं, एकाकी हूं, इस प्रकार ध्यान करनेवाला योगी परम पदको प्राप्त होता है।

भमिदे मणुवावारे भमंति भूयाइ तेसु रायादी ।
ताण विरामे विरमदि सुचिरं अप्पा सरूवम्मि ॥ ४६ ॥

भ्रांतेषु मनोव्यापारेषु भ्रमंति भूतानि तेषु रागादिषु ।
तेषां विरामे विरमति सुचिरं आत्मस्वरूपे ॥ ४६ ॥

चौपाई ।

मन व्यापार भ्रमते होवै, राग द्वेष पुनि आवै ।
मनको रोके सोइ रुकै ह, तब आतम थिरता प्रगटै है ॥ ४६ ॥

अर्थ—मनका व्यापार स्थान स्थान भ्रमण करता है तो उनमें रागादि भाव होते हैं, और जब मनका व्यापार रुक जाता है तो आत्मा निज स्वरूपमें ठहरता है ।

भावार्थ—जब मन जगह जगह अनेक वस्तुओंमें भटकता है तो इष्टमें राग अनिष्टमें द्वेष होता ही है और मनोव्यापार रुक जाता है, बाह्य पदार्थोंमें नहीं भटकता, तो फिर रागादि किसमें हो, क्योंकि कोई पदार्थ इन्द्रिय विषयमें इष्ट है, कोई अनिष्ट है । उनका निमित्त पाकर आत्माके साथ बंधे हुए कषाय कर्म उदय आते ही हैं । क्योंकि बाह्य पदार्थ रागद्वेषके नो कर्म हैं । इसलिये मनको इन्द्रिय विषयोंसे रोकनेके लिये आत्मानुशासनमें ऐसे कहा है—

छन्द शिखरिणी ।

अनेकांती ही हैं फल कुसुम शब्दार्थ जिसमें,
जहां वाणी पत्ते बहुत नय शाखा लसत है ।
घनी है ऊँचाई जड़ दृढ़ मतिज्ञान जिसकी,
रमावै विद्वान् या श्रुततरुविषै चित्त कपिको ॥१७०॥

प्रथम अवस्थामें चित्त विना आलंबन ठहरे नहीं इसलिये श्रुतज्ञानमें चित्तको लगावे, जिससे कि इन्द्रिय विषयोंसे चित्त रुक जावे तो पापबन्धका संवर होवे और पुन्यबंधका कारण धर्मध्यान रहे, ऐसे अभ्यास करते करते निरालंब ध्यानका अभ्यास हो जाय तब शुक्लध्यान होय है। यह ही शून्य ध्यान है। जो कि श्रेणी आरोहणकालमें होता है वह कर्म निर्जराका कारण है।

अब्भंतरा य किच्चा बहिरत्थसुहाइ कुणइ सुण्णतणुं।
णिच्चिंतो तह हंसो पुंसो पुण केवली होई ॥ ४७ ॥

अभ्यंतरं च कृत्वा बहिरर्थसुखानि कुरु शून्यतनुं।
निश्चिंतस्तथा हंसः पुरुषः पुनः केवली भवति ॥ ४७ ॥

चौपाई।

बाह्य सुखोंमें ही मध्यस्था, मनको रोक होय शो स्वस्था।
भाव चित्तका करे विनाशा, होता केवलज्ञान प्रकाशा ॥ ४७ ॥

अर्थ—बाह्य सुखोंमें मध्यस्थ भाव कर अभ्यंतर मनको रोककर तनको शून्य बनाता योगी भाव मनका नाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लेना है अर्थात् द्रव्य मनके होते हुए भी मनोइंद्रियमें लब्धि और उपयोगरूप क्रिया नहीं रहती।

जं परमप्पय तच्चं तमेव विमक्कामतत्तमिह भणियं।
झाणविसेसेण पुणो णायव्वं गुरुपसाएण ॥ ४८ ॥

यत् परमात्मकं तत्त्वं तदेव विषकाम्यतत्त्वमिह भणितं।
ध्यानविशेषेण पुनः ज्ञातव्यं गुरुप्रसादेन ॥ ४८ ॥

चौपाई।

तत्त्व परम आत्मा ही जानो, काम तत्त्व ताहीको मानो।
ध्यान भेद और भी कोई, गुरु उपदेशित सोइ होई ॥ ४८ ॥

अर्थ—जो परमात्मा है वह ही काम तत्त्व है, अन्य कोई काम तत्त्व नहीं है। और भी गुरु उपदेशते ध्यानके भेदोंका अभ्यास करो।

कामंधो मयमत्तो इंदियलुद्धो सहावदोलाओ।
जइ पुण तं पयडत्थं अक्खिवज्जइ तहिमि खुप्पेइ ॥४९॥

कामांधः मदमत्तः इन्द्रियलुब्धः स्वभावदोलातः।
यदि पुनः तं प्रकृतार्थं... ......॥ ४९ ॥

चौपाई।

काम अंध मदमाते जीवा, पंचेन्द्रियमें रक्त सदीवा।
लोक अभ्य योगादि दिखाते, सो संसार विषे भटकाते॥ ४९॥

अर्थ—कामसे अंधे पांचों इन्द्रियोंके विषयके लालुपी मदोन्मत जीव लोकनिको कुछ योगाभ्यासके आभासरूप साधनासे स्पष्ट कुछ चमत्कारादि दिखाते हैं, ते संसारिक विषयोंमें उन लोगोंको फंसाते हैं।

भावार्थ—मैस्मेरीजम प्राणायाम नेती धोती क्रिया जिसमें कि आंतें बाहर निकाल धोकर पीछी स्थापित करना इत्यादि चमत्कार दिखाके भोले लोगोंको भ्रममें डालकर दीर्घ संसारकी वृद्धि करें है, क्योंकि इन क्रियाओंमें कष्ट तो बहुत, लौकिक चमत्कारादिके सिवाय कुछ आत्महित होता नहीं। इन्द्रिय विषयकी ही पुष्टि होती है सो संसारवृद्धिका कारण है। जैसे इन्द्रजालिया मुखमें लोह गोले निगल जाय पीछे काढले और रेशमका धागा नाकमें होकर मुंहमें निकाल ले तैसे है। शुभचन्द्र, भर्तृहरि दोनों भाई संसारमें विरक्त हो वनमें गये। शुभचन्द्र दिगम्बर साधु हुए। भर्तृहरि मार्ग भूल अलग हो गये सो रसकुप्पिकाके लोभमें पड़ गोरखनाथके शिष्य होकर २ रस-

कुप्पिका पाई । सो बड़े भाई शुभचन्द्र मुनिको ढुंढवाकर उनके पास भेजी । वह निस्पृही, उसने कुप्पिकाको पत्थर पर पटकवादी तब भर्तृहरि दूसरी कुप्पिका लेकर स्वयं गया तब उनको समझानेके लिये ज्ञानार्णव ग्रंथ बनाया । ध्यानका उसमें विशेष वर्णन है, सो वहांसे जानना ।

अन्तज्जोई कमलं बिंदु णादं च तहय चउमेयं ।
अण्णं चिय विण्णाणं सव्वं भवकारणं भणियं ॥ ५० ॥

अन्तर्ज्योतिः कमलं बिंदुर्नादं च तथा चतुर्भेदं ।
अन्यमपि विज्ञानं सर्वं भवकारणं भणितं ॥ ५० ॥

चौपाई ।

अंत ज्योति कमल बिंदी है, नादरूपी चव भेदी है ।
और किते ही ध्यान प्ररूपा, सो जानो भवकारण रूपा ॥ ५० ॥

अर्थ—अन्तर्ज्योति, कमल, बिंदु, नाद ऐसे चार तरहका ध्यान अन्यमती कहैं सो सब संसारका कारण है ।

अब अवसर पाके और मतवालोंकी जो ध्यान प्ररूपणा है वह व्यर्थ है ऐसा दिखाते हैं—

सांख्य द्रव्यको सर्वथा नित्य अपरिणामी मानता है, इसलिये अपरिणामी आत्माकी ध्यानमें परिणति होना उसकी मान्यतासे विरुद्ध है । परिणति नहीं मानने पर सुख दुखका अनुभव स्मरण इच्छादि परिणतिके अभावसे तत्वका चिंतवन तो नित्यवादीके बन ही नहीं सकता । फिर ध्यान करनेसे क्या लाभ ? अत. नित्यवादी सांख्यकी ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है । और जो बौद्धादि सर्व वस्तु अनित्य क्षणभंगुर ही मानते हैं तो फिर ध्यानका प्रारम्भ तो किसने किया और फल

किसको मिले। और प्रति समय जीव बदलता गया तब एकाग्र चिंतवन रूप ध्यान स्थिर रह नहीं सकता, क्योंकि स्थिर जीवमें ही स्थिर चिंतवन हो सकता है।

अतः अनित्यवादी बौद्धकी ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है और देहात्मवादी चार्वाक जो कि पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाशके संयोगसे चैतन्य शक्ति अर्थात् एक कल बन जाती है उसके पुरजोंमें खराबी आ जानेसे चैतन्य शक्ति मिट जाती है, पुनर्जन्म नहीं होता, ऐसा माननेवाले चार्वाकको ध्यानकी आवश्यक्ता ही नहीं। ध्यान तो वह करे जो कि सुख दु.ख स्वर्ग मोक्षादि रूप जीवकी अवस्था माने और विज्ञानवादियोंके ज्ञान मात्र ही वस्तु मानी है, जानने मात्र ही है, अन्य पदार्थ ही नहीं, तो ज्ञेयको जाने बिना ज्ञान ऐसी संज्ञा कैसे हुई।

इसलिये ज्ञान ज्ञेय सम्बन्ध अनादि है और पदार्थ ज्ञान मात्र ही है तो ध्यान किसका करे। और जिनके मनमें जाननेवाला ज्ञान ही नहीं तो स्वका अनुभव कैसे हो। अनुभवके बिना ध्यान कैसे हो सकता है।

अर्थात् अनुभव ही तो ध्यान है और ध्यानके बिना किये निराकुल होता नहीं तब ही जानने मात्र है। ऐसा माननेवाले विज्ञानवादीकी ध्यान कल्पना व्यर्थ है और नैरात्मवादी जो शून्यवादी वह सर्व शून्य मानते हैं, उनके ध्याता ध्येय ध्यान ध्यानका फल यह सब कल्पना कछुएके केशोंसे आकाशके फूलोंकी माल गूंथना है।

और द्वैतवादी नैयायिक वैशेषिक ईश्वर और जीवकी दो जाति मानते हैं और [illegible] हो सकता नहीं अतः सदा सुखी

सकता नहीं तो फिर ध्यानसें क्या सिद्ध साधना है अतः द्वैतवादियोंके भी ध्यानप्ररूपण व्यर्थ है।

और अद्वैतवादी जोकि रोमें रोमें लहुगमें खेममें एक सर्वव्यापी ईश्वर है ऐसा मानते हैं, ईश्वर सिवाय दूसरा पदार्थ ही नहीं ऐसे वेदांती तिनके ध्यान करनेवाला ईश्वर ध्येय भी ईश्वर। और ईश्वर तो खुद ही है फिर उसमें ऊंचा और कौन है जैसा बननेके लिये ध्यान करे ऐसें अन्य एकांत मतवालोंके ध्यान प्ररूपणा व्यर्थ है।

और जैन अनेकांती वस्तूको द्रव्य अपेक्षा नित्य, पर्याय अपेक्षा अनित्य, पृथ्वी जल आदि जनित शरीर है उसमें यह जीव अपने पूर्व बांधे शुभ अशुभ कर्मोंके उदयसे शरीरप्रमाण हो शरीरमें आयुकर्मके आधीन रहता है फिर नवीन आयुष्य बंधकर इस पर्यायको पूर्ण करके अन्य शरीर धारण करता है।

अतः इस शरीर अपेक्षा पुनर्जन्म नहीं क्योंकि वर्तमान शरीरमें यहीं रह जाता है। जीव निकलकर अन्य शरीरमें जन्म लेता है वह संभव है और सर्वज्ञके ज्ञानमात्र ही वस्तु है। ज्ञान बाह्य कोई वस्तु नहीं, भूत भविष्यत वर्तमान त्रिकालगोचर वस्तु सर्वज्ञके ज्ञान बाह्य नहीं। अतः उनके ज्ञानमात्र ही वस्तु है। ज्ञान ही है और कुछ नहीं, यह कथन नहीं बन सका। जीव बिना सर्व पुद्गलादि पदार्थ अन्य हैं, इनका संबंध ही संसार है ऐसे तो शून्य भावना संभवे।

और जो सर्वलोकमें कोई पदार्थ ही नहीं ऐसा कहलानेवाले भी तो हैं।

शून्य कैसे मानते हैं और संसारी जीव कर्मकार मुक्त हुए हैं

वह पहलेके हुए ईश्वरोंमें मिले नहीं, द्रव्य क्षेत्र काल भावतें जुदे हैं, इस अपेक्षा तो संसारी ईश्वर नहीं होते ।

ईश्वर सरीखे गुण नवीन मुक्त जीवोंमें नहीं ऐसा मानना नहीं बन सक्ता सो गुणोंकी अपेक्षा सर्व मुक्त जीव समान हैं और द्रव्य क्षेत्र कालादिकी अपेक्षा भिन्न हैं और उनका ज्ञान सर्वत्र लोमें मोमें सङ्गमें सेममें लोक अलोकमें सर्वत्र व्याप्त है, इस पेक्षा तो सर्वत्र ईश्वर व्याप्त है ।

अद्वैतवादियोंकी तरह सर्वत्र ईश्वरहीका अंश है यह नहीं बन सक्ता ।

यह संसारी कर्मबंधतें बंधे पुराने भोगते जाते हैं, नवीन बांधते जाते हैं तो इस दुःखके फंदेसे छूटनेके लिये ध्यान करें, क्योंकि जीव-द्रव्यकी पर्यायें पलटती रहती हैं और ध्यानादितें याकी परिणति शुभाशुभ क्रियासे छूट शुद्धोपयोगमें लगाकर हेयको छोड़ उपादेयको ग्रहण कर कर्मकी निर्जरा करि सर्वथा कर्म मुक्त होकर अनंत गुणोंके धारक ईश्वर होते हैं, बहांसे विना कर्मके भव भ्रमना नहीं । अतः जन्मना मरना नहीं, शरीर और इंद्रिय नहीं अतः आकुलता नहीं, स्वात्मजनित सुखोंका अनुभव करते तिष्ठे हैं । अतः अनेकांतमतमें ही ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यानका फल यह कथन हो सक्ता है, परवादि एकांतियोंके नहीं ।

ध्यानके साधनोंका वर्णन—

वयणियमसीलसंजमगुणोओ तह य धम्म रयणाइं ।
लब्भं ति परमझाणे .... ं च दुहमयं ॥ ५१ ॥

मनोनियमशीलसंयमगुप्तयः तथा च धर्मः रत्नानि ।
सम्पूर्णे परमध्यानं अन्यदपि न भवं दुर्लभं ॥ ५१ ॥

चौपाई ।

मनो नियम शील गुप्त होई, संयम रतनत्रय तप सोई ।
परम ध्यान सो वो ही पाई, और सोन दुर्लभ है भाई ॥५१॥

अर्थ—मन नियम शील संयम गुप्ति तथा धर्म रत्नत्रय इनके धारण किये परम ध्यान जो शुक्ल ध्यान तिसकी प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

भावार्थ—इनके धारणसे निराकुलता होती है, इन्द्रियें वश होती हैं, तब चित्तकी एकाग्रता होती है इसलिये ध्यान करनेवालेके लिये इनका पालना आवश्यक है।

ध्यानसे स्वतः ही सांसारिक प्रयोजन भी सधते हैं—

णासग्गजोई जीहा अदंसणं पंच तिण्णि एगाई ।
घोसा सवणे सहस्स चंदाच्छिद्देसि दह दियहा ॥ ५२ ॥

नासाज्योतिः जिह्वा अदर्शनं पञ्च त्रीणि एकानि ।
घोषा श्रवणं सह... ...दश दिवसानि ॥ ५२ ॥

चौपाई ।

नाक अग्री जिह्वा नहिं सोई, पण त्रय इक दिन जीवै सोई ।
बहिरा होय सात दिन जीवा, छिद्रित चांद दिवस दश जीवा ॥५२॥

अर्थ—नासिकाका अग्र भाग दिखना बंद हो उससे पांच दिनमें मृत्यु होती है। भमि मध्य नहीं दीखै तो तीन दिनमें मृत्यु होती है। जिन्हा नहीं दीखै तो १ दिनमें मृत्यु होती है। कर्णमें एकाएक ...कि नहीं गई तो ७ दिनमें मृत्यु होती है। चन्द्रमा छिद्र सहित

दीखे तो १० दिनमें मृत्यु होती है। (ममि किसी अंगका नाम है सो समझमें नहीं आया)।

पवन साधनादिसे शुभाशुभका वर्णन—

खिदिजलमरुहवि गयणं णाडीचक्कंमि पंच तत्ताइं।
एक्कोकं चिय घडियं कमेण पवहंति उदयाओ ॥ ५३ ॥

क्षितिजलमरुदपि गगन नाडीचक्रे पंचतत्वानि।
एकैकमपि घटिकं क्रमेण प्रवहंति उदयात् ॥ ५३ ॥

चौपाई।

पृथ्वी सलिल पवन अगनी हैं, नभयुत पांच तत्व ये ही हैं।
एक एक घटि उदय इन्हींका, और कहुं सुन भेद हु नीका ॥५३॥

अर्थ—पृथ्वी, जल, पवन, अग्नि, आकाश यह पांच तरहका पवन है, यह ही पांच नाडीचक्र हैं. इनका एक एक घडीका उदय रहता है।

उड्ढं वहदि य अग्गी अहो जलं तह तिरिच्छओ पवणो।
मज्झपुडंमि य पुहई णहोवि सव्वंपि पूरंतो ॥ ५४ ॥

ऊर्ध्वं वहति च अग्निः अधो जलं तथा तिर्यक् पवनः।
मध्यपुटे च पृथ्वी नभोपि सर्वमपि पूरयन् ॥ ५४ ॥

चौपाई।

अगनी उर्ध्व निरन्तर गति पानी, पवन वेग तिरछी गति मानी।
पृथ्वी निश्चल मध्य निवासा, सर्व व्याप्त मानो आकाशा ॥५४॥

अर्थ—अग्नि तत्व ऊर्द्धगामी है, जल तत्व नीचेको वहता है। वायु तत्व तिरछा चलता है। पृथ्वी तत्व मध्यभागमें स्थिर रहता है। आकाश तत्व सर्वव्यापी है।

अग्गितिअंगुलमाणो छंगुल पवणो य पुहइतवि उणो ।
चउवीसंगुलमाणो व वहइ सलिलं च तत्तम्मि ॥ ५५ ॥

अग्निः त्र्यंगुलमानः षडंगुल पवनः च पृथ्वीतत्वं पुनः ।
चतुर्विंशांगुलमानः वा वहति सलिलं च तत्वे ॥ ५५ ॥

चौपाई ।

अग्नि तीन अंगुल जेती, पवन अंगुली छै हीं तेती ।
पृथ्वी बारह अंगुल जानों, चतुर्वीस अंगुलि जल मानों ॥ ५५ ॥

अर्थ—अग्नि तीन अंगुल प्रमाण बहती है। पवन तत्व छै अंगुल बहता है। पृथ्वी बारह अंगुल जल २४ अंगुल बहता है।

कंठुड्ढेण हु सासो णाहीउड्ढंमि सुणह तह पवणो ।
जाणुड्ढं तह पुहई सलिलं चिय पाइउड्ढंति ॥ ५६ ॥

कण्ठोर्ध्वेन हि श्वासः नाभ्यूर्ध्वे मध्यम तथा पवनः ।
जान्वूर्ध्वं तथा पृथ्वी सलिलमपि पादोर्ध्वमिति ॥ ५६ ॥

चौपाई ।

अग्नि कंठ उपरैं होई, पवन नाभि पायू अरु सोई ।
घुटने ऊपर पृथ्वी वासा, इम स्थानोंमें पवन निवासा ॥ ५६ ॥

अर्थ—कंठके उपरिम भागमें अग्नि तत्व, नाभिमें पवन तत्व, घुटनेके ऊपर पृथ्वी तत्व, गुदामें उपरिम भागमें जल तत्वका निवास है।

अग्गि त्रिकोणो रत्तो किण्हो य वट्टंगणो तहा चित्तो ।
चउकोणं पिय पुहवी सेय जलं सुद्धचंदाभं ॥ ५७ ॥

अग्निः त्रिकोणः रक्तः कृष्णश्च पवनस्तथा वृत्तः ।
चतुष्कोण अपि पृथ्वी श्वेतं जल शुद्धचन्द्राभ ॥ ५७ ॥

चौपाई ।

अग्नि त्रिकोण आरक्त रंग भासा, पवन गोल अरु श्याम प्रकाशा ।
भूमि पीत चोकोर हि भाषो, सलिल श्वेत चंद्राभ पिछानों ॥ ५७ ॥

अर्थ-अग्नि त्रिकोण लाल रंग, पवन गोलाकार श्यामवर्ण, पृथ्वी चोकोण पीतवर्ण, जल अर्द्ध चंद्राकार शीतल चंद्रसमान श्वेत होता है।

पुहई सलिलं च सुहं वामाणाडी य प्रवहणमाणमिणं।
तेयं पवणं च णहं असुहाइ इमाइ तत्ताइं॥ ५८॥

पृथ्वी सलिलं च शुभं वामानाडी च प्रवहमानमिदं।
तेजः पवनश्च नभः अशुभानि इमानि तत्त्वानि॥ ५८॥

चौपाई।

बहै वाम नाडी तैं जानो, सो जल पृथ्वी सुखकर मानो।
अग्नि पवन नभ बहै दुखकारी, दक्षिण नाडी तैं गति भारी॥५८॥

अर्थ-पृथ्वी और जलतत्व वाम नासिकामें प्रवेश करती सो शुभ अग्नि पवन आकाश वाम नासिकामें बहै सो अशुभ है, सो ही ज्ञानार्णवमें कहा है—

वामेन प्रविशंतौ वरुणमेहेन्द्रौ समस्तसिद्धिकरौ।
इतरेण निःसरंतौ हुतभुक् पवनौ विनाशाय॥

जल और पृथ्वी यह वामनाडीसे प्रवेश करती सर्वसिद्धि करती है। अग्नि और वायु द्वितीयादक्षिण नाडीसे निकलती विनाशके लिये है।

इडपिंगलाण पवणं सीउण्हं तत्त परमयं णाओ।
ये छीओण सुहमसुहं जीवियमरणं च जाणेइ। ५९॥

इडापिंगलयोः पवनः शीतोष्ण ....
...........शुभमशुभं जीवितमरणं च जानाति॥ ५९॥

चौपाई ।

इडा पिंगला इंडी जानों, जानों सुख दुखकर यों बखानी ।
जीवन मरण आदि सब जोई, सो सब निश्चय जानें होई ॥ ५९ ॥

अर्थ—इडा वाम नाडी, पिंगला दक्षिण नाडी और शीत उष्णको सम्यक् जानकर फिर उनसें सुख दुख जीवन मरणको जानो, ऐसें संक्षेपमें वर्णन है। इसका विशेष वर्णन ज्ञानार्णवके उनतीसवें पर्वमें जानना चाहिये। यहां कथन करनेमें विस्तृत हो जायगा इसलिये नहीं लिखा है। ज्ञानार्णवसें इसमें कुछ अंतर है सो लौकिक बातोंमें है, परमार्थ वर्णनमें तो अंतर नहीं। ज्ञानार्णवमें विशेष वर्णन है।

अब संसारकी अनित्यता बताते उपसंहार करैं हैं—

तडिदंबुबिंदुतुल्लं जीविय तह जोव्वणं धणं धण्णं ।
णाऊणमिणं सव्वमथिरं परमप्पबुद्धीए ॥ ६० ॥

तडिदबुबिंदुतुल्य जीवन तथा यौवन धनधान्य।
ज्ञात्वा इदं सर्वं अस्थिर परमात्मबुद्ध्या ॥ ६० ॥

चौपाई ।

बिजली जल बुदबुद वत धारे, जोबन जीवन तन धन सारे।
ऐसें सब अथिर पहचानो, परम आत्मको करहु प्रमाणो ॥६०॥

अर्थ—बिजली अथवा जल बुदबुद समान जीवन, योवन, धन-धान्य सब अस्थिर हैं। इस प्रकार परमार्थ बुद्धिसे जानो।

णियमणपडिबोहत्थं परमसरूवस्स भावणाणिमित्तं ।
सिरिपउमसिंहमुणिणा णिम्मवियं णाणसारमिणं ॥ ६१ ॥

निजमनःप्रतिबोधार्थे परमस्वरूपस्य भावनानिमित्तं ।
श्रीपद्मसिंहमुनिना निर्मापितं ज्ञानसारमिदं ॥ ६१ ॥

चौपाई।

निज मनके प्रतिबोधन काजा, परम आत्मध्यानका साजा।
पद्मसिंह मुनिने यह कीना, ज्ञानसार यह ग्रन्थ नवीना ॥६१॥

अर्थ—निज मनको प्रतिबोधनेके लिये पद्मसिंह मुनिने परम स्वरूपका ध्यान करनेको यह ज्ञानसार ग्रंथ बनाया है।

सिरिविक्कमस्स काले दशसयछासोजुयंमि वट्टमाणे।
सावणसियणवमीए अंबयणयरम्मि कयमेयं ॥ ६२ ॥

श्रीविक्रमस्य काले दशशतषडशीतियुते वर्तमाने।
श्रावणसितनवम्यां अंबकनगरे कृतमेतत् ॥ ६२ ॥

चौपाई।

एक सहस अरु छयासी साला, विक्रम संवतका है काला।
श्रावण सुदि नौमी दिन सोई, अंबद नगर पूर्ण सो होई ॥६२॥

अर्थ—श्री विक्रम संवत् १०८६ में श्रावण सुदि ९ को अंबद नगरमें बनाया।

परिमाणं च सिलोया चउहत्तरि हुंति णाणसारस्स।
गाहाणं च तिसट्ठी सुललियबंधेण रइयाणं ॥ ६३ ॥

परिमाणेन च श्लोकाः चतुःसप्ततिः भवंति ज्ञानसारस्य।
गाथानां च त्रिषष्ठी सुललितबंधेन रचितानाम् ॥ ६३ ॥

चौपाई।

प्राकृत त्रय षष्टी हैं गाथा, स्लोक अनुष्टुप बहत्तर साथा।
ललित शब्द मय रचना कीनी, ज्ञानसार यह संज्ञा दीनी ॥६३॥

अर्थ—प्राकृत गाथा ६३ जिसका अनुष्टुप छन्दोंमें प्रमाण ७२ है। इसकी ज्ञानसार संज्ञा रखकर ललित शब्दोंमें रचना की है।

चौपाई-बंध तथा टीकाकारकी प्रशस्ति ।

दोहा ।

गुलाबचन्द रु राजमल, सोनी-गोत्री जोय ।
दीना भाषा करनको, उपकृत बुद्धी होय ॥ १ ॥
प्राकृत गाथामम हुता, णाणसार यह ग्रन्थ ।
पद्मसिंह मुनीन्द्रकृत, मोक्षमार्गका पंथ ॥ २ ॥
प्राकृतकी टीका हुती, संस्कृत भाषा माँहि ।
दोनोंके आधारसे, कीना मुम कृत नांहि ॥ ३ ॥
गद्य विषे कछु अधिकहू, अन्य ग्रंथ आधार ।
धनालाल गुरु कृपातैं, पढ़कर किला विचार ॥ ४ ॥
कछु अयुक्त हू किला हो, शुद्ध करैं गुणवान ।
बालक ठोकर खाय तो, पुचकारहिं धीमान ॥ ५ ॥
उन्नीसो सत्ता विषै, कार्तिक वदि तिथि नौमि ।
त्रिलोकचंद्र पूरण किया, रहो जहांतक पदुमि ॥ ६ ॥
सुवस बसो पुर केकड़ी, जहं सहधर्मी थोक ।
औषध चट शाका तणी, मदत करैं सब लोक ॥ ७ ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥